ओ३म्

...द्‌भागवत महापुराण' में ...व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियां

[...लेखक की अप्रकाशित 'श्रीमद्‌भागवत महापुराण का आलोचनात्मक अध्ययन' का एक अध्याय]



लेखक व प्रकाशक

डा० शिवपूजन सिंह कुशवाह एम० ए० (संस्कृत),
साहित्यालङ्कार, विशारद, विद्यावाचस्पति,
सिद्धान्तवाचस्पति।



संचालक—श्रीमद्दयानन्द वैदिक शोध-संस्थान, कानपुर

विक्रम संवत्
२०३१

मूल्यम्
२ रुपया

लेखक : डॉ. श्री शिवपूजनसिंह कुशवाह, एम्. ए.

द्वितीय परिच्छेद :

'श्रीमद्भागवत महापुराण' में व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियाँ

'श्रीमद्भागवतके निर्माता वेदव्यास माने जाते हैं, परन्तु उनसे व्याकरणकी भयंकर अशुद्धियां होनी असम्भव है। बोपदेवकी कृति होनेके कारण ही ये अशुद्धियां हुई हैं—

(१) जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः ... । (भागवत १।१।१)

यहां 'यत:' (जिससे) पदका प्रयोग अशुद्ध है, क्योंकि सर्वनाम संज्ञक पदका निर्देश पूर्व निर्दिष्ट पदके स्थानपर ही होता है। यहां इस श्लोकसे पूर्व कुछ भी प्रकृत नहीं है। अतः 'यत:' सर्वनाम पदका प्रयोग नहीं होना चाहिए था।

(२) निगमकल्पतरोर्गलितं ...। (भागवत १।१।३)

यहां 'गलितम्' अशुद्ध है, 'पतितम्' ऐसा कहना चाहिए। फलसे पृथक् होनेमें 'गिरना' क्रियाका प्रयोग होता है, अतः 'गलना' क्रियाका प्रयोग अनुचित है।

एक षष्ठी (= निगमकल्पतरोः) में अथवा दो पञ्चमी (= निगमकल्पतरोः- शुक मुखात्) का प्रयोग अशुद्ध है। 'निगमकल्पतरोः' में षष्ठी तथा 'शुक मुखात्' में पञ्चमीका परस्पर कोई अन्वय नहीं होता। यदि 'निगमकल्पतरोः' में पञ्चमी मानें तब भी दोनों पञ्चमियोंका परस्पर अन्वय नहीं बनता है। 'शृणुत' ऐसा कहनेके स्थानमें 'पिबत' (पीओ) का प्रयोग भी अशुद्ध है। भागवत ग्रन्थ शब्दरूप है। अतः उसके लिए 'सुनो' क्रियाका प्रयोग होना चाहिए न कि 'पीओ' क्रियाका, क्योंकि वह जलके समान तरल पदार्थ नहीं है।

(३) तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गानुवर्णितुम्। (भागवत १।१।१३)

पाणिनि धातुपाठ सं. १५५२,१९३८ के अनुसार वर्ण चुरादिगणीय धातु है इसलिए 'अनुवर्णयितुम्' रूप होगा। यहां चुरादि धातुको भ्वादि और अनिट्को सेट्का प्रयोग अशुद्ध है।

(४) सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया। (भागवत १।१।१५)

यहां 'अस्थान उपसर्गयोगः' है।

(५) द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव पुत्रेति ...। (भागवत १।२।२)

यहां 'दूराद्धूते च' (अष्टा० ८।२।८४) के अनुसार प्लुत होकर 'पुत्रेति' में सन्धि कार्य नहीं होना चाहिए।

(६) धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य ...। (भागवत १।२।९)

यहां 'अपवर्ग्य' प्रयोग अपाणिनीय है। अष्टाध्यायी ५।१।१ (प्राक् क्रीताच्छः) के अनुसार 'अपवर्गीय' शुद्ध रूप होगा।

(७) कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत ...। (भागवत १।२।१०)

यहां 'जीवेत' को 'परस्मैपद' को 'आत्मनेपद' में प्रयोग करना अशुद्ध है।

(८) यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम्। (भागवत १।२।१५)

यहाँ 'अनुध्या' प्रयोग अशुद्ध है। यह विचित्र प्रयोग भागवतमें है। शुद्धरूप 'अनुध्यान' होगा।

(९) नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः।
(भागवत १।२।२६)

यहाँ 'अनसूयु' विशेषण अपाणिनीय है। इसलिए श्री ज्ञानेन्द्र सरस्वती अष्टाध्यायी ३।२।१७० (क्याच्छन्दसि) सूत्रसे 'अनसूयु' को 'तत्त्वबोधिनी' में सिद्ध नहीं कर सके। उनका कथन है- 'कथमपि सन्तः प्रणयिवाक्यानि गृह्णन्तिह्यनसूयवः इति भट्टपादाः ?'

(१०) स्थित्यादये 'हरिविरिञ्चिहरेति' संज्ञाः।
(भागवत १।२।२३)

यहाँ किस सूत्रसे सन्धि की गई है ?

(११) स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्क्ते भुतेषु तद्गुणान्। (भागवत १।२।३३)

यहाँ 'निर्विष्ट' प्रविष्ट अर्थमें प्रयोग है। अतः 'अस्थान उपसर्ग योग:' है।

(१२) धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च।
(भागवत १।३।१७)

यहाँ 'द्वादशमम्' और 'त्रयोदशमम्' प्रयोग अपाणिनीय है। 'नान्तादसंख्यादेर्मट्' (अष्टाध्यायी ५।२।४९) सूत्रके अनुसार 'द्वादशं, त्रयोदशं' प्रयोग शुद्ध होगा।

(१३) अवतारे षोडशमे पश्यन्।
(भागवत १।३।२०)

'नान्तादसंख्यादेर्मट्' (अष्टा. ५।२।४९) के अनुसार 'षोडशे' रूप होगा।

(१४) एकोनविंशे विंशतिमे...। (भागवत १।३।२३)

'विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्' (अष्टा० ५।२।५६) सूत्रके अनुसार 'विंशतिमे' प्रयोग अशुद्ध है। 'विंशे' या 'विंशतितमे' प्रयोग शुद्ध होगा।

(१५) नामानि रूपाणि मनोवचोभिः।
(भागवत १।३।३७)

'आपं चैव हलन्तानाम्' इति वाचा शब्दस्य साधुत्वेऽपि वचेतित्यसाध्वेव।

(१६) इति ब्रुवाणं संस्तूय। (भागवत १।४।१)
पितिकृतितुकिसंस्तुत्येत्येव साधु।

'संस्तुत्य' प्रयोग शुद्ध है। 'संस्तूय' प्रयोग अशुद्ध है।

(१७) युवैषतोत्क्षुत्क्षमहो सहासुभिः।
(भागवत १।४।११)

यहाँ 'ऐषत' प्रयोग अपाणिनीय है। 'ऐच्छत्' प्रयोग होना चाहिए।

(१८) 'दुर्मेधान्' (भागवत १।४।१७ और १।४।२४)

यहाँ 'दुर्मेधान्' प्रयोग अपाणिनीय है। यह प्रयोग 'नित्यमसिच् प्रजामेधयोः' (अष्टा. ५।४।१२२) के अनुसार अशुद्ध है।

(१९) स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
(भागवत १।४।२५)

यहाँ 'श्रुतिगोचरा' प्रयोग अशुद्ध है। 'गोचर' शब्द घप्रत्ययान्त नित्य पुमान् है। 'श्रुतेर्गोचर विग्रहः' है। यहाँ 'श्रुतिगोचर' प्रयोग शुद्ध होगा।

(२०) शिवाय लोकस्य भवाय भूतये।
(भागवत १।४।१२)

'भवश्च भूतिश्चेत्यु भयमेकार्थक' है। प्रत्यय भेदमें अर्थभेद नहीं है। अतः यहाँ 'अधिक पद' का प्रयोग है। यहाँ 'क्लिष्टान्वय:' दोष भी है। यहाँ तो शिव, भव, भूति ये तीनों ही शब्द कल्याणार्थक हैं अतः एकसे ही प्रयोजन सिद्ध हो सकता था अतिरिक्त अधिक पद ही है।

(२१) अथ तं सुखमासीन उपासीनं बृहच्छ्रवाः।
(भागवत १।५।१)

यहाँ 'बृहच्छ्रवाः' बहुयश' प्रयोगमें है। लोकमें 'श्रवः' शब्दका 'यशसि' रूढि नहीं है।

(२२) न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो।
(भागवत १।५।१०)

चित्रपदमपीति विवक्षितम्। यथास्थितेऽपि शब्देऽसति विरुद्धमति कृत्वं दोषः।

(२३) तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि। (भागवत १।५।११)

(क) यह श्लोक असम्बद्ध है। इस श्लोकके उत्तरार्धमें 'नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः' का विधान है और पूर्वार्धमें 'वाग्विसर्गः' अर्थात् व्यापार है। वाणीका अव्यापार होनेपर 'श्रवण' क्रिया नहीं हो सकती और 'श्रवण' क्रिया होनेपर वाणीका व्यापारभाव नहीं माना जा सकता।

(ख) 'क्लिष्टान्वय' है। यदि त्येकवचनं-पूर्वत्र श्रुतं नामानीत्येतत् परामृशति। वचनभेदाद् दुर्घटोऽन्वयः।

(२४) समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम्।

(भागवत १।५।१३)

यहाँ 'चेष्टितम्' में 'वि' उपसर्ग लगाना व्यर्थ है, क्योंकि 'चेष्टितम्' ही पर्याप्त है।

(२५) अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु...
निरूपितो बालक एव योगिनां...।

(भागवत १।५।२३)

(क) यहाँ सप्तमीके स्थानमें 'दास्याः' पञ्चमीका प्रयोग व्यवहारको दूषित करता है।

(ख) 'निरूपित इति नियुक्त इत्यर्थेऽशक्तम्। निरूपणं लक्षणं भवति। रूपाद् दर्शने णिचोविधेः।'

(२६) भिक्षुभिर्विप्रवसिते।

(भागवत १।६।२ और १।६।५)

'विप्रवसिते' अपशब्द है। 'विप्रोषिते' प्रयोग सही होगा। 'वस' (निवासे) धातु सम्प्रसारण कार्यवाली है, ऐसा महाभाष्य (वसिः प्रसारिणी ७।२।१०) में कहा है। संवत्सरोषितः० प्राप्य उषित्वा० आदि उदाहरणोंमें ('उषित' पदका प्रयोग होने) से 'विप्रवसितः' पद अशुद्ध ही है।

(२७) न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्व-
निराकृतिः। (भागवत १।६।४)

यहाँ 'अट्' निषेध किस सूत्रसे किया गया है।

(२८) वर्तमानो वयस्याद्ये तत एतदकारषम्।

(भागवत १।६।५)

'वर्तमानो वयस्याद्ये' यहाँ रेफमें स्वर (अ) किस सूत्रसे हुआ है?

'अकारषम्' प्रयोग भी अशुद्ध है। 'अकार्षम्' प्रयोग शुद्ध होगा।

(२९) सर्वान्मुञ्चति हृच्छयान्।

(भागवत १।६।२३)

'हृद्गतवासना' इस अर्थमें प्रयोग है। अन्यत्र 'हृच्छयः' 'काम' अर्थान्तर है। इसलिए यहाँ अप्रसिद्ध शब्दका अप्रसिद्ध अर्थ है।

(३०) प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम्। (भागवत १।६।१०)

'प्रातिष्ठं' प्रयोग 'समवप्रविभ्यः स्थः' (अष्टा० १।३।२२) सूत्रके विरुद्ध है। यहां क्रिया आत्मनेपद होनी चाहिए।

(३१) गन्ता मज्जनतामसि। (भागवत १।६।२४)

यहाँ 'गन्ता' 'तृन्' धातुसे नहीं बना है, वरन् यह 'लुट्' है। 'मज्जनताम्' प्रयोग लौकिक संस्कृतमें अशुद्ध है।

(३२) उपाहरद्विप्रियमेव तस्य जुगुप्सितं।

(भागवत १।७।१४)

यहाँ 'उप' उपसर्गका अनुपयुक्त प्रयोग है।

(३३) कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत्।

(भागवत १।७।९)

कस्येत्यतः परं कारणात्कृते इति वाऽध्याहरणीयम्। यहाँ 'अध्याहार' दोष है।

(३४) प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम्।

(भागवत १।७।३२)

'लोकव्यतिकरो' का अर्थ 'लोकविनाश' है। व्यतिकरश्च नाशार्थे रूढः।

(३५) वृजिनं नार्हति प्राप्तुं...।

(भागवत १।७।४६)

अप्रसिद्ध शब्दका प्रयोग है। 'वृजिनं' कष्ट अर्थमें है। अन्यत्र 'पाप' अर्थमें है।

(३६) यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरजितात्मभिः।
तत्कुलं प्रदहत्याशु सानुबन्धं शुचार्पितम्॥

(भागवत १।७।४८)

यहां 'क्लिष्टान्वय' है।

(३७) मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम्।

(भागवत १।८।१९)

अज्ञमित्यज्ञातमलक्षितमाह। अज्ञशब्दस्यैषोर्थः स्वप्नगम्योऽपि न। एवजातीयान्पदपदार्थान्निबध्नन्कविः काव्यसधर्मेदं पुराणं व्याख्यागम्यमिति गमयति।

(३८) भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः।

(भागवत १।८।२०)

यहाँ 'अध्याहार' दूषण है।

अत्र विधानार्थं इत्यतोनन्तरं धरामवतीर्णं इति शेषो बोध्यः।

(३९) यथा पङ्केन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम्।'

(भागवत १।८।५२)

'अत्र दौर्गन्ध्यमितिशेषः'।

अध्याहार दूषण है।

(४०) अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात्।

(भागवत १।८।३३)

×

यहाँ 'अपरे' के साथ 'अभ्यगात्' का प्रयोग असाधु है।

(४१) पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः।

(भागवत १।८।४४)

यहाँ 'परिणूत' शब्द असाधु है। टीकाकार पं. श्रीधर स्वामी कहते हैं- 'णुस्तुताविव्यस्मात् परिणूतेति वक्तव्ये दीर्घः छन्दोऽनुरोधेन' अर्थात् णु धातुसे 'परिणुत' शब्द ही बनता है, अतः 'नूत' प्रयोग (ह्रस्वके स्थान पर दीर्घ होना) छन्द मिलानेके लिए है।'

(४२) सर्वधर्मविवित्सया।

(भागवत १।९।१)

यहाँ 'विविित्सया' अपाणिनीय प्रयोग है। 'विविदिषयेति' प्रयोग शुद्ध होगा।

(४३) यो योगिनश्छन्दमृत्यो।

(भागवत १।९।२९)

'छन्दमृत्योरिति व्यधिकरणो बहुव्रीहि समास 'अनेकमन्यपदार्थे' (अष्टा० २।२।२४) सूत्रके अनुसार—

प्रथमान्तानामेव बहुव्रीहि रनुशिष्टः।

अतः यहाँ 'दुष्टावुविग्रहः समास' है।

(४४) ऋषीणां चानुशृण्वताम्।

(भागवत १।९।२५)

यहाँ 'अस्थान उपसर्ग योग' है।

(४५) प्रकृतिमगन् किल यस्य गोपवध्वः।

(भागवत १।९।४०)

यहाँ 'अगन्' प्रयोग अशुद्ध है। 'अगमन्निस्येव' प्रयोग पाणिनीय है।

(४६) कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम्।

(भागवत १।९।२४)

'हिनोमि' त्यजामि' अर्थमें प्रयुक्त है। अन्यत्र यह अर्थ दुर्लभ है।

यहाँ 'अप्रसिद्ध शब्द व अर्थ' का प्रयोग है।

(४७) तुष्टाव जन्यं विसृजञ्जनार्दनम्।

(भागवत १।९।३१)

जन्यं शरीरमित्याह। तत्र चेदमतितरामप्रसिद्धम्।

(४८) तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणीः।

(भागवत १।९।३०)

लौकिक संस्कृतमें 'सहस्रणी' प्रयोग नहीं होता है। 'सेनानीः' शब्दका प्रयोग तो मिलता है।

(४९) मम दृशिगोचर एष आविरात्मा।

(भागवत १।९।४१)

यहाँ यदि पदोंको व्यस्त रखना हो तो 'दृशोर्गोचर' होना चाहिए था और यदि समस्त रखना हो तो 'दृग्गोचर' होना चाहिए था। वर्तमान पाठ तो व्यवहारको दूषित करता है।

(५०) ... किमकारषीत्ततः। (भागवत १।१०।१)

'अकारषीत्' प्रयोग असाधु है। 'अकार्षीत्' प्रयोग पाणिनीय है।

(५१) संरोह्यित्वा...निवेशयित्वा।

(भागवत १।१०।२)

'संरोहयित्वा व निवेशयित्वा' प्रयोग 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (अष्टा० ७।१।३७) के विरुद्ध है।

सोपसर्गक धातुसे 'ल्यप्' के स्थानपर 'त्वा' का प्रयोग और 'निवेश्य' के स्थानपर 'निवेशयित्वा' प्रयोग क्यों हुआ है?

(५२) परिध्युपान्तामनुजानुवर्तितः।

(भागवत १।१०।३)

'परिध्युपान्तां' 'समुद्रपर्यन्त' अर्थमें है। 'परिधिरिति' कभी भी समुद्रके लिए पर्यायवाचक नहीं देखा गया है। अतः 'अप्रसिद्ध शब्द' का प्रयोग है।

(५३) सिषिचुःस्मव्रजान् गावः पयसोधस्वतीर्मुदा। (भागवत १।१०।४)

यहाँ 'ऊधस्वतीः' प्रयोग असाधु है। यहाँ 'ऊधस्वत्यः' प्रयोग पाणिनीय है।

(५४) स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम्।

(भागवत १।१०।२२)

यहाँ 'सिसृक्षतीम्' प्रयोग असाधु है। 'सिसृक्षन्तीम्' यह प्रयोग पाणिनीय है।

(५५) प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः।

(भागवत १।१०।२९)

वेदमें 'शुष्म' का अर्थ बल है। यह लौकिक संस्कृतमें नहीं पाया जाता है, केवल वैदिक संस्कृतमें ही प्रयोग होता है।

पुराणमें 'शुष्म' का अर्थ 'मत्त' है।

(५६) अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः।

(भागवत १।१०।३२)

यहाँ 'गोपीथ' शब्द अपाणिनीय है।

(५७) ववृषुः कुसुमैः कृष्णें ।

(भागवत १।१०।१६)[1]

यहाँ 'कृष्णे' सप्तम्यन्त पाठका प्रयोग अशुद्ध है। यहाँ 'द्वितीयान्त' प्रयोग होना चाहिए ।

(५८) मरुधन्वमतिक्रम्य ।

(भागवत १।१०।३५)

यहाँ 'धन्वन्' आधार है, 'धन्व' नहीं। "समानौ-मरुधन्वानौ" (अमरकोष २-१-६) के अनुसार 'धन्व' शब्दका प्रयोग अशुद्ध है ।

(५९) रविं विनाक्ष्णोरिव ।

(भागवत १।११।९)

यथा रविंविनाऽक्षिणीकिमपि कर्तुमक्षमे भवतः ...

यहाँ 'अध्याहार' दोष है ।

(६०) दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ।

(भागवत १।११।१)

दरः का अर्थ यहाँ शङ्ख है। भय, इसका अर्थ प्रसिद्ध है। अतः यहाँ 'अप्रसिद्ध' शब्दका प्रयोग है ।

(६१) उप्तां फलपुष्पाक्षताङ्कुरैः ।

(भागवत १।११।१४)

आकीर्णामिति विवक्षति। प्रपूर्वो वपतिः परापूर्वो वा प्रासने वर्तते, केवलस्तु बीजसन्ताने केशकर्तने वा ।

(६२) बाह्वो लोकपालानां सारङ्गाणां पदांबुजम्।

(भागवत १।११।२६)

अत्राश्रय इत्यध्याहरणीयम् ।

श्रीधरजी अपनी टीकामें 'सारङ्गाः' का अर्थ 'कृष्णभक्त' करते हैं। उनकी व्युत्पत्ति है— 'सारं कृष्णं गायन्तीति।'

यहाँ 'रूढि प्रत्यनादर' है क्योंकि 'सारंग' शब्द रूढिके विरुद्ध 'भ्रमर' अर्थमें प्रयुक्त है ।

(६३) नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम्। न वितृप्यंति हि दृशः... ।

(भागवत १।११।२५)

अत्र यच्छब्दो यस्मात्कारणादित्यर्थक उपात्तः, हि शब्दोऽपि तदर्थकः। तयोरन्यतरः शक्यः परिहर्तुम्।

यहाँ 'यत्' और 'हि' दोनोंमेंसे कोई एक अधिक है।

(६४) आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः॥

(भागवत १।११।३७)

पृङ् व्यायामे इति तौदादिकः, तेन शे प्रत्यये शानचि व्याप्रियमाणमितिस्यात् ।

'व्यापृण्वानम्' अशुद्ध है। 'व्याप्रियमाणम्' प्रयोग शुद्ध होगा ।

(६५) किं ते कामाः सुरस्पार्हाः ।

(भागवत १।१२।६)

'सुरैरपि स्पृह्याः' अर्थ है। इसका रूप सिद्ध करना दुष्कर है।

काशी व मथुरा संस्करणमें 'स्पार्हाः' प्रयोग है, पर किसी किसी संस्करणमें 'स्पार्हाः' प्रयोग भी है।

(६६) अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम् ।
अपीच्य दर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ।

(भागवत १।१२।८)

(क) यहाँ 'पुरट' का अर्थ 'स्वर्ण' है। अन्यत्र 'पुरट' का अर्थ 'स्वर्ण' प्रसिद्ध नहीं है। अतः अप्रसिद्ध शब्दका प्रयोग है।

(ख) 'अपीच्य' का प्रयोग केवल 'वैदिक संस्कृत' में होता है, लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग नहीं होता है।

(५७) सर्वसद्गुण माहात्म्ये ।

(भागवत १।१२।२४)[2]

सर्वैः सद्गुणैर्माहात्म्यं यस्येति विग्रहः ।

यह 'दुष्ट दुर्विग्रह समास' है।

(६८) हित्वेदं नृप गङ्गायां यास्यत्यद्धाऽकुतोभयम् । (भागवत १।१२।२८)[3]

अत्रदं शब्देन शरीरं परामृश्यत इत्यूहनीयम्।

यहाँ श्री युधिष्ठिरके प्रति जातकर्म संस्कार करनेके लिए आए हुए ज्योतिषी ब्राह्मणोंकी उक्ति है, बिना इसके शुभ

---

१ 'श्रीमद्भागवत महापुराण' बालबोधिनी भा. टी. पृष्ठ ९३
[श्यामकाशीप्रेस मथुरामें मुद्रित व प्रकाशित, द्वितीय संस्करण]

२ 'बालबोधिनी भा० टी०, द्वि० सं. पृष्ठ ४० में श्लोक सं. २४ है; परन्तु 'सामयिकी भा० टी० (सजिल्द) पृष्ठ ८१ में श्लोक सं. २५ है। गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करणमें श्लो. २४ है— (लेखक)

३ बालबोधिनी भा० टी०, पृष्ठ ४० में श्लोक सं. २८ है और काशी संस्करण (सामयिकी भा. टी.) पृष्ठ ८१ में श्लोक सं. २९ है। गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करण में २८ है —(लेखक)

या अशुभ कर्मभोग नहीं भोगे जा सकते हैं। यहाँ 'इदम्' की स्पष्टताके लिए 'शरीरम्' का अध्याहार आवश्यक है। अतः यहाँ 'अध्याहार' दोष है।

(६९) यावतः कृतवान् प्रश्नान् क्षत्ताकौषारवाग्रतः।
जातैकभक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह।
(भागवत १।१३।२)

अत्र तावतां त्रिचतुरैर्द्वित्रैरुत्तरैः सन्तुतोषत्येतावान्प दसन्दोहः पूरणीयो भवति। तथा सत्येव चकारः समुच्चायकोर्थयान्भवति, नान्यथा। यदि चकारोनर्थक इत्यभ्युपेयते तदा कृतेभ्यः सर्वेभ्यः प्रश्नेभ्य उपरराम इति प्रश्नक्रियैवानर्थिका स्यात्।

(७०) युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान्।
(भागवत १।१३।८)

यहाँ 'पक्ष' शब्द 'पक्षपात' अर्थमें प्रयुक्त है परन्तु यह अप्रसिद्ध अर्थ है।

(७१) आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे।[४]
(भागवत १।१३ २१)

यहाँ 'आससे' अशुद्ध है। शुद्ध प्रयोग 'आस्से' होना चाहिए।

(७२) हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षम्।
(भागवत १ १३।२९)

'न्यस्तदण्डा' इति संन्यासिन उक्ताः। नूत्नाशब्द प्रक्लृप्तिः। अर्थस्तु शक्य उन्नेतुम्।

(७३) आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितोऽपतत्। (भागवत १।१३।३२)[५]

आशङ्कमान इत्यर्थे प्रयोगः। आशंसते इच्छतीत्यनर्थान्तरम्।

यहाँ 'अस्थान उपसर्गयोग' दोष है।

(७४) तावद्यूयमवेक्षध्वं...।
(भागवत १।१३।४९)[६]

इत्यत्र चावपूर्वं ईक्षतिः प्रतीक्षणे प्रयुक्तः। उदुपसर्गः प्रतिर्वाद्योतयतीति प्रतीतम्। न त्ववः।

(७५) मा कञ्चन शुचो राजन्।
(भागवत १।१३।४०)[७]

यहाँ 'शुचः' प्रयोग अशुद्ध है। 'शोचीः' प्रयोग पाणिनीय है।

(७६) स वा अद्यतनाद्राजन् परतः पञ्चमेऽहनि।
(भागवत १।१३।५६)[८]

यहाँ 'व्यवहार दूषण' है।

अत्राद्यतनादह इति व्यवहारं विरुन्धे, वैयर्थ्यं च धत्ते। अद्येत्यस्मिन्नहनीत्यर्थे निपातः। अत्राहोरूपेकालेऽधिकरणे द्रव्यं वा क्रिया वाऽऽधेया स्यान्त्वहरेव। कवयस्त्वत्रार्थे केवलम् अद्याति प्रयुञ्जत इत इति वा।

(७७) कालरूपोऽवतीर्णोऽस्याम।
(भागवत १।१३।४८)[९]

अवतीर्ण इमाम् इति शिष्ट व्यवहारः। अभिषेकायसलिलमवतीर्णः भुवमवततारेत्यादिषु शतशो महाकविप्रयोगेषु कर्मविभक्तेर्द्वितीयायाः श्रवणात्।

---

४ 'उपाससे' प्रयोग बालबोधिनी भा. टी., पृष्ठ ४३ में है, पर श्लोक संख्या २० है। सामयिकी भा. टी. पृष्ठ ८४ में श्लोक सं. २१ है पर 'उपासते' पाठ है। गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करणमें श्लोक सं. २१ है और 'उपाससे' पाठ है– (लेखक)

५ सामयिकी भा. टी., पृष्ठ ८५ में श्लोक सं. ३३ है, मथुरा संस्करण, बालबोधिनी भा. टी., प्रथम खण्ड, पृष्ठ ४३ में श्लोक सं. ३१ है। गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करणमें श्लोक सं. ३२ है– (लेखक)

६ वही, काशी संस्करण सामयिकी भा. टी., पृष्ठ ८६ में श्लोक सं. ५१ है, गीताप्रेस गोरखपुरमें, व मथुरा संस्करण, पृष्ठ ४५ में श्लोक सं. ४९ है– (लेखक)

७ वही, काशी सं. सामयिकी भा. टी., पृष्ठ ८५ में श्लोक सं. ४१ है, मथुरा संस्करण पृष्ठ ४४ में श्लोक सं. ३९ है। गीताप्रेस, गोरखपुरमें ४० है– (लेखक)

८ वही, मथुरा संख्या पृष्ठ ४५ में श्लोक सं. ५६ है, काशी संस्करण, पृष्ठ ८७ में श्लो. सं. ५८ है। गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करणमें श्लोक सं. ५६ है– (लेखक)

९ वही, मथुरा संस्करण, पृष्ठ ४५ में ४८ श्लोक सं. है, काशी संस्करण, पृष्ठ ८६ में श्लो. सं. ५० है। गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करणमें ४८ है— (लेखक)

(७८) अथारुहत् स्वर्गम्। (भागवत १।१३।५९)[10]

'आरुहत्' केवल वैदिक संस्कृतमें प्रयोग होता है' लौकिक संस्कृतमें नहीं होता है। लङ्में 'आरोहत्' और लुङ्में 'आरुक्षत्' होगा।

(७९) यदाऽऽत्मनोऽङ्गमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति। (भागवत १।१४।८)

आक्रीडशब्द उद्याने रूढः। अयं व्युत्पत्त्यर्थमाश्रित्य विशेषणं प्रयुङ्क्ते।

यहाँ 'रूढि प्रत्यनावर:' है।

(८०) न दुह्यन्ति च मातरः।

(भागवत १।१४।१९)

यहाँ 'दुह्यन्ति' अपाणिनीय प्रयोग है। यह कर्मवाच्यमें 'दुह्यन्ते' होगा।

(८१) अधिक्रमन्ति ...। (भागवत १।१४।३८)

यहाँ 'अधिक्रमन्ति' अपाणिनीय प्रयोग है। 'क्रमः परस्मैपदेषु' (अष्टाध्यायी ७।३।७६) के अनुसार 'अधिक्रामन्ति' प्रयोग होना चाहिए।

(८२) एको रथेन ततरेऽहमतार्यसत्त्वम्।

(भागवत १।१५।१४)

अतीर्यमिति शब्दरूपं चापि च्युतसंस्कृतिकम्। अतार्यमित्येव साधु।

(८३) मां श्रान्तवाहमरयो रथिनो भुविष्ठम्।

(भागवत १।१५।१७)

अत्र भुविष्ठमिति दुष्यति। मूर्धन्यादेशविधेरदर्शनात्।

(८४) यत्तेजसा नृपशिरोऽङ्घ्रिमहन्मखार्थे।

(भागवत १।१५।९)

नृपशिरःसु अङ्घ्रिर्यस्य, नृपशिरांस्यङ्घ्रयोर्यस्येति वा विग्रहः।

यहाँ 'अध्याहार दोष है। यहाँ 'जरासन्ध' विशेष अवश्य होना चाहिए।

(८५) सख्यसितानि नरदेव हृदिस्पृशानि स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य।

(भागवत १।१५।१८)

यहाँ 'णिच्' निषेध किस सूत्रके द्वारा हुआ है?

(८६) शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः।

(भागवत १।१५।१९)

यहां 'वकार' किसने किया?

(८७) भस्मन् हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम्॥

(भागवत १।१५।२१)

यहाँ 'भस्मन् हुतं' प्रयोग अशुद्ध है। 'भस्मनि हुतम्' शुद्ध प्रयोग है।

'उप्तमूष्याम्'। यहां 'ऊषी' स्त्रीलिङ्गमें व्यवहृत है, परन्तु प्रायः 'स्यादूषः क्षारमृत्तिका' (अमरकोष २।१।५) के अनुसार यह 'ऊषः' है।

'ऊषसुषिमुष्कमधोरः' (अष्टाध्यायी ५।२।१०७) के अनुसार 'ऊषर' शब्द बनता है।

(८८) पश्चात्तेह्य जोहवीत्।

(भागवत १।१५।४१)

यहाँ 'अजोहवीत्' प्रयोग अशुद्ध है। यह वैदिक प्रयोग है, लौकिक संस्कृत इसका प्रयोग नहीं होता है।

'अजोहवीति' प्रयोग होगा।

(८९) सर्वमात्मन्यजुहवीद् ब्रह्मण्यात्मानमव्यये।

(भागवत १।१५।४२)

यहाँ 'अजुहवीत्' प्रयोग अशुद्ध है।

श्लोक ४१, ४२ में कौनसा प्रयोग सही है यह पौराणिक बतलावें?

(९०) जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयत् सुतान्। (भागवत १।१६।२)

यहां अनुष्टुपमें ९ अक्षर कैसे हुए? 'उत्पादयत्' में अडागमका अभाव है। 'उदपादयत्' शुद्ध प्रयोग होगा।

(९१) ...गां यः पदाहनत्।

(भागवत १।१६।५ व ६।१३।१०)

'अहनत्' अशुद्ध प्रयोग है। 'हन्' धातुका लङ्में 'अहन्' प्रयोग होना चाहिए।

(९२) मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वयो मन्दायुषश्च वै। निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः॥

(भागवत १।१६।९)[11]

---

१० वही, मथुरा सं. पृष्ठ ४५ में ५९ श्लोक सं. है, काशी संस्करण, पृष्ठ ८७ में श्लोक सं. ६२ है। गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करण, पृष्ठ ७४ में श्लोक सं. ५९ है— (लेखक)

११ मथुरा संस्करण, बालबोधिनी भा. टी., पृष्ठ ५४ में श्लो. सं. ९ है, काशी संस्करण, सामयिकी भा. टी., पृष्ठ ९७ में श्लोक सं. १० है। गीता प्रेस, गोरखपुर (अष्टम संस्करण) में श्लोक सं. ९ है— (लेखक)

यहां 'व्यवहार दूषण' है। यहां 'वय' शब्द आयु अर्थमें प्रयुक्त है। बाल्यादि अवस्था विशेषमें 'वय' होता है।

(९३) सारथ्यपारषदसेवन...।
(भागवत १।१६।१७)[12]

यहाँ 'पारषद' प्रयोग अशुद्ध है। 'अण्' द्वारा 'पर्षत्' से 'पार्षद' प्रयोग शुद्ध है।

(९४) सह ओजो बलं भगः।
(भागवत १।१६।२९)[13]

'सह' छान्दसम् है। लोकमें सहसा, साहसम्, साहसिकः है।

(९५) यदुषु रम्यमविभ्रदङ्गम्।
(भागवत १।१६।३५)[14]

'अविभ्रत्' प्रयोग असाधु है। 'अविभः' प्रयोग शुद्ध होना चाहिए।

(९६) विना ते प्राणिनां शुचः।
(भागवत १।१७।८)

यहाँ षष्ठी प्रयोग अशुद्ध है।

(९७) यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साध्व्यसाधुभिः। (भागवत १।१७।१०)

'त्रस्यन्ते' प्रयोग असाधु है। 'त्रस्यन्तीति' प्रयोग पाणिनीय है।

(९८) केचिद् विकल्पवसना।
(भागवत १।१७।१९)

'विकल्पवसनाः' यह शब्द और अर्थ दोनों अप्रसिद्ध और कविकल्पित है।

(९९) हरेरुदारं चरितं विशुद्धं शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन्। (भागवत १।१८।१५)

यहाँ 'शुश्रूषतां' प्रयोग अपाणिनीय है।

'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः' (अष्टा० १।३।५७) के अनुसार 'शुश्रूषमाणानाम्' प्रयोग शुद्ध है।

(१००) महद्गुणत्वाद् यमनन्तमाहुः।
(भागवत १।१८।१९)

यहाँ 'महद्गुणत्वात्' प्रयोग अपाणिनीय है।

'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' (अष्टा० ६।३।४६) के अनुसार 'महागुणत्वात्' प्रयोग शुद्ध है।

(१०१) ...अन्यतमो मुकुन्दात् को नाम लोके भगवत्पदार्थः। (भागवत १।१८।२१)

अन्यो मुकुन्दादिति वक्तुमुचितम्। उतमच्प्रत्ययेनानर्थः।

यहाँ 'व्यवहार दूषण' है।

(१०२) ... द्वारपानां शुनामिव।
(भागवत १।१८।३३)

'एकाजुत्तरपदेणः' (अष्टा. ८।४।१२) के अनुसार 'द्वारपानां' प्रयोग अशुद्ध है। लिपिकर प्रमाद हो सकता है।

(१०३) दक्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम्। (भागवत १।१८।३७)

(क) 'तत' शब्द केवल वैदिक संस्कृतमें प्रयोग होता है। लौकिक संस्कृतमें 'तात' पिताके अर्थमें प्रयोग होता है।

(ख) यहाँ 'ह्रस्व' कैसे ?

(१०४) कौशिक्याप उपस्पृश्य०...।
(भागवत १।१८।३६)

यहाँ सन्धिकार्य कैसे ?

(१०५) श्रुत्वा सुतविलापनम्।
(भागवत १।१८।३९)

अत्रच्छन्दोनुरोधाद् दीर्घीकृतः प्राकृतेर्थे विलपतेर्णिज्योरगादितः। विलापन शब्दो विलपनं तु नाचष्टे।

(१०६) यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुम्पकात्।
(भागवत १।१८।४४)

(क) 'वसोः' प्रयोग अशुद्ध है। 'वसुनः' पाणिनीय है।

(ख) 'विलुम्पकात्' प्रयोग अशुद्ध है। 'विलोपकात्' पाणिनीय है।

(१०७) ... न मेऽभूत्। (भागवत १।१९।३)[15]
यह अपाणिनीय प्रयोग है।

---

१२ मथुरा संस्करण, पृष्ठ ५४ में श्लोक सं. १६ है जब कि काशी संस्करण, सामयिकी भा. टी. पृष्ठ ९८ में श्लोक सं. १७ है। गीताप्रेस, गोरखपुरमें १६ है।

१३ वही, मथुरा संस्करण व गीताप्रेस गोरखपुर संस्करणमें उपर्युक्त श्लोक है, काशी संस्करणमें श्लोक सं. २९ है।

१४ वही, मथुरा संस्करणमें श्लो. सं. ३४ है, काशी संस्करणमें श्लोक सं. ३५ है। गीताप्रेस, गोरखपुरमें श्लोक सं. ३४ है- (लेखक)

१५ काशी संस्करण, सामयिकी भा. टी., पृष्ठ १०९ में 'न मेऽस्तु' अशुद्ध मुद्रित है। मथुरा संस्करण, बालबोधिनी भा. टी., पृष्ठ ६४ में 'न मे भूत्' मुद्रित है जो कुछ शुद्ध है। गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण पृष्ठ ८६ में 'न मेऽभूत्' मुद्रित है- (लेखक)

(१०८) निर्वेदमूलो द्विजशापरूपः।

(भागवत १।१९।१४)

यहाँ भगवान् स्वयं ही द्विजशापरूप हुए। 'निर्वेदमूल' स्पष्ट नहीं है। अतः पौराणिक बतलावें कि कौन समास है?

(१०९) ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे।

(भागवत १।१९।२४)

'पृच्छ्यं' प्रष्टव्यम् अर्थमें है।

'प्रच्छ' धातुसे 'ण्यत्' करने पर 'पृच्छ्यम' प्रयोग होना चाहिए।

(११०) श्यामं सदापीच्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं। (भागवत १।१९।२८)

'अपीच्य' वैदिक शब्द है और लौकिक संस्कृतमें प्रयुक्त नहीं है।

यहाँ 'अपीच्यं' प्रयोग सदोष है।

(१११) महासने सोपविवेश पूजितः।

(भागवत् १।१९।२९)

'सोपविवेश' में 'सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम्' (अष्टा० ६।१।१३०)[१६] के अनुसार सन्धि अशुद्ध है।

स्कन्ध २

(११२) प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ताविधिषेधतः।

(भागवत २।१।७)

'षेधतः' अपाणिनीय प्रयोग है। 'सेधतः' प्रयोग होना चाहिए। 'सात्पदाद्योः' (अष्टा० ८।३।१११) के अनुसार 'विधिसेधतः' प्रयोगही उचित है।

(११३) तपो रराटीं विदुरादिपुंसः।

(भागवत २।१।२८)

रराटी = ललाट। वेदोंमें 'रराट' प्रयोग आता है। लौकिक संस्कृतमें 'कर्ण ललाटात् कनलंकारे' (अष्टा० ४।३।६५) के अनुसार 'ललाट' प्रयोग होता है।

अतः यहाँ 'रराट' प्रयोग अशुद्ध होता है।

(११४) दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि।

(भागवत २।१।३१)

'द्विजानि' प्रयोग अशुद्ध है। 'द्विजाः' प्रयोग होना चाहिए।

(११५) वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रम्।

(भागवत २।१।३६)

व्याकरण यहाँ 'शिल्प' (कारीगरी) अर्थमें है। लोकमें ऐसा अर्थ प्रसिद्ध नहीं है।

यहाँ 'अप्रसिद्धशब्द अप्रसिद्ध अर्थ' में प्रयुक्त है।

(११६) सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्वं आत्मा।

(भागवत २।१।३९)

यहाँ 'दुष्ट दुर्विग्रह समास' का प्रयोग है।

(११७) लब्धोपशान्तिर्विरमेत कृत्याम्।

(भागवत २।२।१६)

'विरमेत' परस्मैपदमें होना चाहिए, पर यहाँ आत्मनेपदमें क्यों प्रयोग किया गया है?

'व्याङ्परिभ्यो रमः' (अष्टा० १।३।८३) के अनुसार 'विरमति' प्रयोग शुद्ध है।

(११८) उदस्तात् प्रयाति चक्रं नृप शैशुमारम्।

(भागवत २।२।२४)

'उदस्तात्' प्रयोग अपाणिनीय है।

'अस्ताति च' (अष्टा० ५।३।४०) के अनुसार 'अवस्तात्' प्रयोग शुद्ध है।

(११९) 'निर्याति सिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यं यद्।'

(भागवत २।२।२९)

'धिष्ण्यम्' यह पद 'अमरकोष' में 'गृह, नक्षत्र और अग्नि' इन अर्थोंमें पढा है, किन्तु भागवतमें 'विमान' अर्थमें प्रयुक्त कर दिया गया है।

यहाँ 'अप्रसिद्ध शब्द अप्रसिद्ध अर्थ' के प्रयोगका दोष है।

(१२०) 'तदध्यवस्यत्कूटस्थो रतिरात्मन्।'

(भागवत २।२।३४)

यहाँ 'आत्मन्' पद अशुद्ध है। 'आत्मनि' प्रयोग शुद्ध है।

(१२१) 'न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।'

(भागवत २।३।२०)

'शृण्वतः' प्रयोग अपाणिनीय है।

(१२२) 'कथा हरिकथोदर्काः... ।'

(भागवत २।३।१४)

---

१६ अष्टाध्यायीभाष्य-प्रथमावृत्ति, तृतीयभाग, प्रथम संस्करण, (सन् १९६८३ श्रीरामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर द्वारा प्रकाशित), पृष्ठ ६३। अन्य संस्करणोंमें अष्टा. ६।१।१३४ है —(लेखक)

यहाँ भागवतकार 'हरिकथोत्तरा' यह कहना चाहता है, परन्तु लोकमें, 'उदर्क' शब्दका 'उत्तरफल' अर्थ है, सामान्येन उत्तरमात्र नहीं।

यहाँ 'अप्रसिद्ध शब्द अप्रसिद्ध अर्थ' प्रयोग किया गया है।

(१२३) आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ।

(भागवत २।३।१७)

'अदः' शब्द यहाँ भागवतकार 'सूर्य' अर्थमें कहना चाहता है। वेदोंमें 'अद' शब्दसे 'सूर्य' अर्थका बोध होता है। लोकमें यह शैली नहीं अनुसरण की जाती है।

अतः यहाँ 'अप्रसिद्ध शब्द अप्रसिद्ध अर्थ' प्रयोग किया गया है।

(१२४) 'श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः। (भागवत २।३।१९)

इस श्लोकमें 'संस्तुत' पदका परिचित ही अर्थ है और लक्षणासे उसका अर्थ 'समान' भी हो जाता है।

उपसर्गका धातु अर्थके अनुवृत्तमें 'संस्तुत' स्तुतका पर्याय भी होता है।

(१२५) 'श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः।'

(भागवत २।३।२३)

यहाँ 'विष्णुपद्या' का 'विष्णुके चरणोंमें लगी तुलसीकी गंध' अर्थ है। 'विष्णुपद' रूढि है जिसका अर्थ 'जाह्नवी' है। यहाँ 'रूढि प्रत्यनादरः' है।

(१२६) 'भुङ्क्ते गुणान् षोडश...।'

(भागवत २।४।२३)

यहाँ 'भुङ्क्ते' आत्मनेपदमें प्रयोग अशुद्ध है।

(१२७) कालकर्मस्वभावस्थो जीवोऽजीवमजीवयत्। (भागवत २।५।३४)

यहाँ 'जीव' परमात्माके अर्थमें प्रयुक्त हैं। रूढि अर्थ नहीं लिया गया है।

शरीरमें इन्द्रिय व प्राणका अधिष्ठाव आत्मा लोकमें 'जीव' कहलाता है। अतः यहाँ 'रूढि प्रत्यनादरः' है।

(१२८) पशवः पितरः सिद्धाविद्याध्राश्चारणा द्रुमाः

(भागवत २।६।१३)

यहाँ 'विद्याधराः' प्रयोग शुद्ध है।

(१२९) अन्ये च विविधाजीवा जलस्थलनभौकसः।

(भागवत २।६।१४)

यहाँ 'नभौकसः' में सन्धिकार्य अशुद्ध है। यहाँ 'जल० स्थल नभ ओकसः' होगा।

(१३०) अमृतं... त्रिमूर्ध्नः।

(भागवत २।६।१८)

यह अपाणिनीय है जो ऐसी स्थितिमें 'द्वित्रिभ्यां षमूर्ध्नः' (अष्टा० ५।४।११५) के अनुसार पाणिनीमुनिजी 'समासान्त' नियत करते हैं।

(१३१) नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुः।

(भागवत २।६।३६)

(क) यहाँ 'दुष्ट समास' का प्रयोग है।

(ख) यहाँ 'व्यवहार दूषण' है।

(१३२) ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः।

(भागवत २।६।४३)

'रक्षस्' शब्द 'उरग' के साथ अनियमित रूपसे सन्धि कार्य किया गया है। अतः 'रक्षोरग' में सन्धिका प्रयोग अशुद्ध है।

(१३३) अद्भुतार्णम्। (भागवत २।६।४४)

यहाँ 'अद्भुतवर्णम्' होना चाहिए। यहाँ 'व' क्यों लोप किया गया है ?

(१३४) सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन्।

(भागवत २।७।५)

यहाँ 'आत्मन्' प्रयोग अशुद्ध है। आत्मनि' प्रयोग होना चाहिए।

(१३५) 'अस्मिन्विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे।'

(भागवत २।७।३)

अत्रास्मिन्न् इत्युत्तरं जन्मनीति पूरणीयम्।

'अध्याहारबाहुल्यम्' दोष है।

(१३६) 'सत्रेममास भगवान् हयशीरषाथो।'

(भागवत २।७।११)

यहाँ 'हयशीरषा' प्रयोग अशुद्ध है। 'हयशीर्षा' प्रयोग होना चाहिए।

(१३७) 'निद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः।'

(भागवत २।७।१३)

यहाँ 'कषाण' प्रयोग अशुद्ध है। 'कषण' प्रयोग होना चाहिए।

(१३८) 'श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनम्।'

(भागवत २।७।१९)

यहाँ 'अरण' शब्दका अर्थ 'वेद शून्यवचन' है। लोकमें 'अरण्य' शब्दका अर्थ 'आत्मानं लभते' है। यहाँ अप्रसिद्धाः शब्दा अप्रसिद्धा अर्थाश्च' दोष है।

(१३९) 'आपः शिखा घृतवतो।'

(भागवत २।७।१८)

'आपः' प्रयोग अशुद्ध है। यहाँ 'अपः' प्रयोग होना चाहिए।

(१४०) 'उच्चाटयिष्यदुरगम्।'

(भागवत २।७।२८)

'उच्चाटयिष्यदुरगम्' प्रयोग अशुद्ध है। उच्चाटयिष्यति' (लृट्) प्रयोग होना चाहिए।

(१४१) 'कम्पयानम्'

(भागवत २।७।४०)

यहाँ 'कम्पमानम्' प्रयोग शुद्ध है।

(१४२) 'येषां स एव भगवान्दययेदनन्तः।'

(भागवत २।७।४२)

'दययेत्' प्रयोग अशुद्ध है।

दय (भ्वादि) धातुपाठ ४८१ के अनुसार 'दयेत' प्रयोग शुद्ध है।

(१४३) मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवाः।'

(भागवत २।७।४४)

'शतधन्वनु' में सन्धि अशुद्ध है। 'शतधनुरनु प्रयोग शुद्ध है।

(१४४) यावत्यः कर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम्।

(भागवत २।८।१३)

यहाँ 'यादृशीः' प्रयोग अशुद्ध है। 'यादृश्यः' प्रयोग शुद्ध है।

(१४५) विलोक्य तत्रान्यदपश्यमानः।

(भागवत २।९।७)

'अपश्यमानः' प्रयोग अशुद्ध है। 'अपश्यन्' प्रयोग शुद्ध है।

(१४६) स्व एव धामन्। (भागवत २।९।१६)

यहाँ 'धामन्' प्रयोग अशुद्ध है। 'धामनि' होना चाहिए।

(१४७) ब्रह्मञ्छ्रेयः परिश्रामः।

(भागवत २।९।२०)

'परिश्रामः स्वार्थे अण्। नोदात्तोपदेशस्यमान्तस्यानाचमेः (अष्टा० ७।३।३४) के अनुसार ऐसा प्रयोग करनेके लिए पाणिनीजी आदेश नहीं देते हैं।

(१४८) बध्येयं यदनुग्रहात्।

(भागवत २।९।२८)

'बध्येयं' प्रयोग अशुद्ध है।

'बध्येय' प्रयोग पाणिनीय है।

स्कन्ध ३

(१४९) त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय।

(भागवत ३।१।१३)

'अशैवं' यह 'स्वार्थे अण्.शिवमेव शैवम्' से बना है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग नहीं पाया जाता है।

(१५०) क एनमत्रोपजुहाव। (भागवत ३।१।१५)

'अपजुहाव' प्रयोग अशुद्ध है। 'उपाजुहाव' प्रयोग शुद्ध है।

(१५१) पक्ष्मभिरक्षिणीव। (भागवत ३।१।३९)

यहाँ सन्धि पाणिनीके 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' और 'प्लुतप्रगृह्या अचिनित्यम' सूत्रोंके विरुद्ध है।

(१५२) 'न याचतोऽदात्समयेन दायं तमो।'

(भागवत ३।१।८)

'याच्' धातु प्रयोगमें आत्मनेपदी है। अतः 'याचमानस्य' प्रयोग होना चाहिए।

(१५३) 'तितिक्षतो दुर्विषहं तवागः।'

(भागवत ३।१।११)

'तितिक्षतः' प्रयोग अशुद्ध है।

'तितिक्षमाणस्य। गुप् 'तिज्किद्भ्य सन्' से नित्य सन् और आत्मनेपद।

(१५४) 'दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः।'

(भागवत ३।२।१४)

'अवतस्थुः' प्रयोग अपाणिनीय है। 'अवतस्थिरे' प्रयोग उचित है।

(१५५) 'उत्थाप्यापाययद्गावस्तत्तोयं।'

(भागवत ३।२।३१)

यहाँ 'गावः' अशुद्ध प्रयोग है। 'गाः' प्रयोग उचित है।

(१५६) 'समाहुता भीष्मककन्यया ये श्रियः।'

(भागवत ३।३।३)

यहाँ 'हुता' प्रयोग अशुद्ध है। 'हूता' प्रयोग उचित है।

(१५७) 'ककुद्मतोऽविद्धनसो दमित्वा...।'

(भागवत ३।३।४)

यहाँ 'दमित्वा' प्रयोग अशुद्ध है। 'दमयित्वा' प्रयोग उचित है।

(१५८) 'कुमन्त्रपाकेन हतश्रियायुषम्।'

(भागवत ३।३।१३)

'हतश्रियायुषम्' प्रयोग अशुद्ध है। 'हतश्र्यायुषम्' प्रयोग होना चाहिए।

(१५९) 'मध्वामदाताम्रविलोचनानाम्।'

(भागवत ३।३।१५)

'मध्वा' प्रयोग अशुद्ध है। 'मधुना' प्रयोग उचित है।

(१६०) 'एवं सञ्चिन्त्य भगवान् स्वराज्ये स्थाप्य धर्मजम्।' (भागवत ३।३।१६)

'स्थापयति' निरुपसर्गक धातु होनेमें उससे 'ल्यप्' का प्रयोग अपाणिनीय है। 'स्थापयित्वा' प्रयोग ही पाणिनीय है।

(१६१) 'तर्पयित्वाथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः।'

(भागवत ३।३।२६)

'गावो' प्रयोग अशुद्ध है। यहाँ 'ददुः' के लिए 'गाः' का प्रयोग द्वितीयामें होना चाहिए।

(१६२) 'दिष्टया ददृश्वान्।'

(भागवत ३।४।१२)

'ददृश्वान्' प्रयोग अपाणिनीय है। 'क्वसुश्च' (अष्टा, ३।२।१०७) के अनुसार 'ददृशिवान्' प्रयोग उचित है।

'ददृश्वान्' प्रयोग लौकिक संस्कृतमें नहीं होता है. वरन् वैदिक संस्कृतमें होता है।

(१६३) 'प्रतिक्षणानुग्रहभाजनोऽहम्।'

(भागवत ३।४।१४)

'भाजनम्' अजहल्लिङ्ग है और यह सदैव नपुंसक है। इसलिए यह आकृति अशुद्धि है।

'अहं प्राञ्जलिराबभाषे।' श्लोक १४ का अन्तिम पद है जो वचनके विरुद्ध है 'उत्तमपुरुषे चित्तविक्षेपादिना-पारोक्ष्यम्' अतः लिट् प्रथम पुरुषमें व्यवहार नहीं किया गया है।

(१६४) यत्प्रमदायुताश्रयः स्वात्मन् रतेः।

(भागवत ३।४।१६)

'स्वात्मन्रतेः' बहुव्रीहि समास अशुद्ध है। 'स्वात्मरतेः' प्रयोग उचित है।

(१६५) कौषारवोऽन्ति मे। (भागवत ३।४।२६)

'अन्ति' वैदिक क्रुदन्त है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग नहीं होता है। 'अन्तिक' प्रयोग उचित है।

(१६६) यद्धरिरपितत्यज आकृतिं।

(भागवत ३।४।२८)

लिट्में 'तत्याज' पाणिनीके 'अत उपधायाः' (अष्टा० ७।२।११६) सूत्रके अनुसार होना चाहिए। यहाँ 'तत्यज' प्रयोग अपाणिनीय है।

(१६७) न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते।

(भागवत ३।५।४७)

'प्रतिहर्तवे' प्रयोग अशुद्ध है। 'प्रतिहर्तुम्' प्रयोग पाणिनीजीके 'तुमर्थेसेसेनसे... तवैतवेङ्तवेनः' (अष्टा० ३।४।९) के अनुसार उचित है।

(१६८) रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः।

(भागवत ३।५।४९)

'आदधे' प्रयोग अशुद्ध है। 'आदधिवे' प्रयोग शुद्ध है।

(१६९) विविशुर्धिष्ण्यमोषधीः।

(भागवत ३।६।१८)

'ओषधीः' प्रयोग अशुद्ध है। 'ओषध्यः' शुद्ध है।

(१७०) तज्ज्ञः पराणुद विमोकशमलं मानसं महत्।

(भागवत ३।७।७)

'नुद्' आत्मनेपदी धातु है जिसका यथार्थ प्रयोग यहाँ नहीं किया गया है।

भागवत ३।७।१८ में 'पराणुदे' प्रयोग शुद्ध है।

भागवतकार एकही अध्यायमें एक स्थलपर अशुद्ध प्रयोग करता है और दूसरे स्थलपर शुद्ध प्रयोग करता है। भागवतकारने भंग पीकर श्लोकोंको लिखा है।

(१७१) कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः।

(भागवत ३।८।११)

'उदीरयाणः' आत्मनेपद है। यह प्रयोग अशुद्ध है। 'उदिरयमाणः' प्रयोग पाणिनीय है।

(१७२) गुणेन कालानुगतेन विद्धः सूष्यन्।

(भागवत ३।८।१३)

'सूष्यन्' प्रयोग अशुद्ध है। 'सोष्यन्' प्रयोग उचित है।

(१७३) प्रत्यर्हयन्तं सुनसेन सुभ्र्वा।

(भागवत ३।८।२७)

'सुभ्र्वा' प्रयोग अशुद्ध है। 'सुभ्रुवा' प्रयोग उचित है।

(१७४) तान् वदस्वानुपूर्व्येण छिन्धि नः सर्वसंशयान्। (भागवत ३।१०।२)

'वद्' परस्मैपदी धातु है। अतः 'वदस्व' प्रयोग अशुद्ध है।

(१७५) सोऽष्टाविंशद्विधो मतः।

(भागवत ३।१०।२०)

'अष्टाविंशद्विधः' प्रयोग अशुद्ध है। 'अष्टाविंशतिविधः' प्रयोग उचित है।

(१७६) 'अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः।'

(भागवत ३।१०।२५)

(क) पुल्लिङ्ग होनेके कारण 'अर्वाक्स्रोताः' प्रयोग अशुद्ध है।

(ख) 'अर्वाक्स्रोतस्तु' में ह्रस्व कैसे ?

(१७७) 'संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च

(भागवत ३।११।१४)

'इडावत्सर' प्रयोग अशुद्ध है। 'इडावत्सरः' प्रयोग पाणिनीय है।

(१७८) 'तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो।'

(भागवत ३।१२।५)

'मोक्षधर्माणः' प्रयोग अशुद्ध है। 'मोक्षधर्मन्' बहुव्रीहि समास प्रयोग शुद्ध है।

(१७९) 'षोडश्युक्थौ पूर्ववक्त्रात्पुरीष्यग्निष्टु-तावथ।'

(भागवत ३।१२।४०)

'अग्निष्टुत्' प्रयोग उचित नहीं है। यहाँ 'अग्निष्टो प्रयोग उचित है।

(१८०) 'नित्यद्रा।'

(भागवत ३।१२।५०)

लौकिक साहित्यमें 'नित्यद्रा' का प्रयोग नहीं पाया जाता है।

(१८१) 'प्रजाह्येधाम्बभूविरे।'

(भागवत ३।१२।५४)

'भूविरे' प्रयोग अशुद्ध है। 'आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य' (अष्टा० १।३।६३) के अनुसार यहाँ 'आत्मनेपद' अशुद्ध है।

(१८२) 'एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा।'

(भागवत ३।१२।५१)

'अवेक्षते' आत्मनेपदी है। यहाँ परस्मैपदका प्रयोग अशुद्ध है।

(१८३) 'उत्पाद्य शास धर्मेण।'

(भागवत ३।१३।११)

'शास्' अपाणिनीय प्रयोग है।

'शाहौ' (अष्टाध्यायी ६।४।३५) के अनुसार 'शाधि' प्रयोग उचित है।

(१८४) 'खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाप।'

(भागवत ३।१३।३०)

'दरयन्' प्रयोग अशुद्ध है। यहाँ 'दारयन् प्रयोग शुद्ध है।

(१८५) 'श्रवयेत वोशतीं।'

(भागवत ३।१३।४८)

'श्रवयेत' प्रयोग अपाणिनीय है। 'श्रावयेत्' प्रयोग शुद्ध है। यहाँ 'आत्मनेपद' नहीं होना चाहिए।

(१८६) 'यथा मां नातिवोचन्ति।'

(भागवत ३।१४।२१)

'वच' प्रयोग नियम विरुद्ध है। पाणिनीजी 'अदादिगण' (सं. १०६३) में धातुका निर्देश करते हैं। इसलिए 'वचन्ति' अशुद्ध है।

(१८७) 'चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह।'

(भागवत ३।१४।२२)

'भूतेशानुचराणि' विशेषण नहीं हो सकता है जो 'भूतानि' को विशेषित करता हो इसलिए षष्ठीतत्पुरुष समास अशुद्ध है। 'अनुचर' पुंल्लिग है अतः परवल्लिग द्वन्द्वतत्पुरुषयोः (अष्टा० २।२।२६) के अनुसार नियम विरुद्ध है।

(१८८) 'परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाटति।'

(भागवत ३।१४।२३)

यहाँ 'पर्षत्' प्रयोग अशुद्ध है। 'परिषत्' उचित है।

(१८९) हरिकथामिव गायमाने।'

(भागवत ३।१५।१८)

'गायमाने' प्रयोग अशुद्ध है। गै=गाना परस्मैपदी है अत 'गायति' रूप उचित है।

(१९०) 'स्वलकमुलसमीक्ष्यवक्त्रमुच्छेषितं-भगवतेत्यमताङ्ग यच्छ्रीः।

(भागवत ३।१५।२२)

'ईक्ष्य' अशुद्ध है। 'ईक्षित्वा' प्रयोग पाणिनीय है। 'उच्छेषितम्' एक असामान्य अस्पष्ट शब्द है जो 'चुम्बन' के अर्थमें प्रयुक्त है। उसके अन्य समानान्तर उदाहरण प्राप्य नहीं है। 'अमत' प्रयोग भी अशुद्ध है 'अमंस्त' प्रयोग शुद्ध है।

(१९१) भूयादघोनि भगवद्भिरकारि।

(भागवत ३।१५।३६)

'अघोनि' शब्द लौकिक साहित्यमें प्रयुक्त नहीं होता है।

(१९२) वपुर्दर्शयानमनन्यसिद्धैरौत्पत्तिकैः ।
(भागवत ३।१५।४५)

'दर्शयानम्' प्रयोग अशुद्ध है । 'दर्शयमानम्' प्रयोग उचित है ।

(१९३) कीर्तन्यतीर्थयशसः ।
(भागवत ३।१५।४८)

'कीर्तन्य' प्रयोग अशुद्ध है । 'कीर्तनीय' प्रयोग शुद्ध है ।

'कीर्तन्य' शब्द भागवत ३।२५।३ में आया है ।

(१९४) कदर्थीकृत्य मां यद्वो वध्वक्रान्तामतिक्रमम् ।
(भागवत ३।१६।२)

'अक्रान्ताम्' प्रयोग अशुद्ध है । 'अकृषाताम्' प्रयोग उचित है ।

(१९५) भृतयोर्विवासः ।
(भागवत ३।१६।१२)

'भृत' प्रयोग अशुद्ध है । 'भृत्य' उचित है ।

(१९६) वरदया तनुवा निरस्य ।
(भागवत ३।१६।२२)

'तनुवा' अशुद्ध है । 'तन्वा' शुद्ध है ।

(१९७) तदनुमन्महि । (भागवत ३।१६।२५)

'अनुमन्महि' प्रयोग अपाणिनीय है ।

'अनुमन्महे' प्रयोग पाणिनीय है ।

(१९८) निहितस्तद्वैत विप्राः ।
(भागवत ३।१६।२६)

'अवैत' प्रयोग अशुद्ध है । 'अवेत' शुद्ध है ।

(१९९) प्रत्येष्यतं निकाशं मे ।
(भागवत ३।१६।३१)

'प्रत्येष्यतं' अशुद्ध है । 'प्रत्येष्यथः' शुद्ध है ।

'निकाशं' का प्रयोग लौकिक भाषामें अज्ञात है ।

(२००) तदा विकुण्ठधिषणात्तयोर्निपतमानयोः ।
(भागवत ३।१६।३४)

(क) 'धिषण' अशुद्ध है । 'धिष्ण्य' प्रयोग शुद्ध है ।

(ख) 'निपततोः' परस्मैपदके स्थानपर आत्मनेपदका प्रयोग अशुद्ध है ।

भागवत ३।२८।२५ में भी 'धिषण' आया है ।

(२०१) स्फुरदङ्गदाभुजौ । (भागवत ३।१७।१७)

'अङ्गद' नपुंसकलिङ्ग है, परन्तु यह अनियमित स्त्रीलिङ्गमें प्रयोग किया गया है ।

(२०२) वीरशये श्रुभिर्वृतः । (भागवत ३।१७।३१)

'वीरशये' अपाणिनीय है । 'अधिकरणे शेतेः' (अष्टा० ३।२।१५) के अनुसार 'वीरशये' अशुद्ध है ।

(२०३) महामनास्तद्विगणय्य ।
(भागवत ३।१८।१)

'विगणय्य' प्रयोग अशुद्ध है । 'अविगणय्य' प्रयोग शुद्ध है ।

(२०४) संस्थाप्यमूढ प्रमृजे ।
(भागवत ३।१८।४)

'प्रमृजे' अशुद्ध है । 'प्रमार्जिम' शुद्ध है ।

(२०५) सगामुदस्तात्सलिलस्य ।
(भागवत ३।१८।८)

'उदस्तात्' केवल वैदिक संस्कृतमें प्रयोग होता है । दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः । (अष्टाध्यायी ५।३।२७) के अनुसार 'अधस्तात्', 'अवस्तात्' प्रयोग शुद्ध है ।

(२०६) प्रमृजाश्रु स्वकानां यः ।
(भागवत ३।१८।१२)

'प्रमृञ्ज' अपाणिनीय है । 'अमृड्ढि' प्रयोग पाणिनीय है ।

(२०७) दैत्यो गदयाभ्यहनद्धरिम् ।
(भागवत ३।१८।१४)

'अभ्यहनत्' अशुद्ध है । 'अभ्यहन्' शुद्ध है ।

(२०८) अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कण्टकः ।
(भागवत ३।१८।२३)

आत्मनेपद 'अन्वेषमाणः' के स्थानपर यहाँ परस्मैपदका प्रयोग अशुद्ध है ।

(२०९) करालदंष्ट्रं परिदष्टदच्छदम् ।
(भागवत ३।१९।२७)

यहाँ 'दत्' प्रयोग अशुद्ध है । वेदोंमें इसका प्रयोग होता है । लौकिक साहित्यमें 'दन्त' प्रयोग शुद्ध है ।

(२१०) आपो गाङ्गा इवाघघ्नीर्हरेः पादाम्बुजाश्रयाः ।
(भागवत ३।२०।५)

(क) 'अघघ्नीः' का प्रयोग केवल वेदोंमें होता है । लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग अशुद्ध है । 'अघघ्न्यः' प्रयोग होना चाहिए ।

(ख) 'गाङ्गा' प्रयोग अपाणिनीय है । टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः (अष्टा० ४।१।१५) के अनुसार 'गाङ्ग्यः' शुद्ध है ।

(२११) तमो मोहो महातमः ।
(भागवत ३।२०।१८)

'मोहः' प्रयोग अशुद्ध है । 'मोहम्' शुद्ध है ।

(२१२) यक्षरक्षांसि ।
(भागवत ३।२०।२१)

'यक्षरक्षांसि' प्रयोग अशुद्ध है। यह कैसे ?

(२१३) देवताः प्रभया या या दीव्यन् प्रमुखतोऽसृजत्।
ते अहार्षुर्दवयन्तो विसृष्टां तां प्रभामहः।
(भागवत ३।२०।२२)

'देवताः' शब्द स्त्रीलिंग है। यहां पुंल्लिंगमें प्रयोग करना अशुद्ध है।

(२१४) इति सायन्तनीं सन्ध्यामसुराः प्रमदायतीम्।
(भागवत ३।२०।३७)

'प्रमदायतीम्' प्रयोग अशुद्ध है। 'प्रमदायमानाम्' प्रयोग उचित है।

(२१५) कथ्यतां भगवन् यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः।
(भागवत ३।२१।१)

'एध्' से 'लिट्' में 'एधिरे' प्रयोग = इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छ = (अष्टा० ३।१।३६) के अनुसार अशुद्ध है।

(२१६) यत्र च वावतिष्ठते।
(भागवत ३।२२।२०)

'तिष्ठते' आत्मनेपदमें प्रयोग अपाणिनीय है।

(२१७) आसिञ्चदम्बवत्सेति।
(भागवत ३।२२।२५)

'वत्सेति' प्रयोग अपाणिनीय है।

(२१८) पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गित कोविदा। (भागवत ३।२३।१)

'पितृभ्यां प्रस्थिते' प्रयोग अशुद्ध है। व्याकरणके अनुसार 'पित्रोः प्रस्थितयोः' होना चाहिए।

(२१९) ददर्शोत्पलगन्धयः।
(भागवत ३।२३।२६)

'उत्पलगन्धयः' प्रयोग अशुद्ध है। 'उत्पलगन्धीः' प्रयोग उचित है।

(२२०) वयं कर्मकरीस्तुभ्यं।
(भागवत ३।२३।२७)

'कर्मकरी' अशुद्ध प्रयोग है क्यों कि कर्त्ताके स्थानमें कर्मकारकका प्रयोग किया गया है। अतः 'कर्मकर्यः' प्रयोग शुद्ध है।

(२२१) उत्कचकुमुद्गणवानपीच्यस्ताराभिरावृत।
(भागवत ३।२३।३८)

लौकिक संस्कृतमें 'उत्कच'का प्रयोग अप्रचलित है। 'विकच' शब्दका व्यवहार होता है

'अपीच्य'का अर्थ 'अतिसुन्दरः' पं० श्रीधरटीकाकार करते हैं। यह अर्थ किस अधिकारसे किया गया है यह अज्ञात है, क्योंकि 'अपीच्य' वैदिक शब्द है जिसका अर्थ 'अप्रकाशः' है।

(२२२) प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं पत्न्यै यावान् स्वसंस्थया। (भागवत ३।२३।४३)

'प्रेक्षयित्वा' प्रयोग अपाणिनीय है। 'प्रेक्ष्य'के स्थान पर 'त्वा'का प्रयोग अशुद्ध है।

(२२३) माखिद्रोराजपुत्रीत्थमात्मानं।
(भागवत ३।२४।२)

'माखिदः' पाणिनीजीके 'माङि लुङ्' (अष्टा० ३।३।१७५) सूत्रके अनुसार अशुद्ध है।

(२२४) वीर्यश्रिया पूर्त्तमहं प्रपद्ये।
(भागवत ३।२४।३२)

पूर्त्तं = पूर्णम्, परिपूर्णम्। व्याकरणके अनुसार 'पूर्त्तं' शुद्ध है परन्तु इस अर्थमें लौकिक साहित्यमें प्रयुक्त नहीं होता है। 'पूर्णम्' से काम चलजाता है।

(२२५) 'तस्मिन् बिन्दुसरेऽवात्सीद्भगवान्।'
(भागवत ३।२५।५)

'बिन्दुसरे' अशुद्ध है। 'बिन्दुसरसि' शुद्ध है।

(२२६) 'अग्निरिन्धे सगिरिभिर्भूर्न मज्जति यद्भयात्। (भागवत ३।२९।४२)

'सगिरिभिः' अपाणिनीय है।

'वोपसर्जनस्य' (अष्टा० ६।३।८२) के अनुसार 'सगिरिः' प्रयोग होना चाहिए।

(२२७) 'यावतीर्यातनाश्चयः।'
(भागवत ३।३०।३४)

यहाँ 'यातना' कर्त्ताकारकमें है इसलिए 'यावतीः' अशुद्ध है। 'यावत्यः' होना चाहिए।

(२२८) 'मोहान्मन्मायामृषभायतीम्।'
(भागवत ३।३१।४१)

'ऋषभायतीम्' अशुद्ध है। 'ऋषभायमानां' प्रयोग 'कर्तुःक्यङ्सलोपश्च' के अनुसार होना चाहिए।

(२२९) 'ये स्वधर्मान्नदुह्यन्ति।'
(भागवत ३।३२।५)

'दुह्यन्ति' अशुद्ध है। 'दुहन्ति' प्रयोग उचित है।

(२३०) 'तेपुस्तपस्ते जुहुवुः।'
(भागवत ३।३३।७)

'तेपु' अशुद्ध है। 'तपस्तपःकर्मकस्यैव' (अष्टा० ३।१।८८)के अनुसार 'तेपिरे' उचित है।

(२३१) 'तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यम्।'

(भागवत ३।३३।३२)

'मार्त्यं' अशुद्ध है। 'मर्त्य' होना चाहिए।

स्कन्ध ४

(२३२) 'तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः।' (भागवत ४।१।६)

'आनेमुक्' (अष्टाध्यायी ७।२।८२) के अनुसार 'कामयानाम्' प्रयोग अशुद्ध है।

(२३३) 'अनाहुता अप्यभियन्ति...।'

(भागवत ४।३।१३)

यहाँ 'अनाहुता' अशुद्ध है। 'अनाहूता' शुद्ध है। 'हुता' में ह्रस्व नहीं होना चाहिए।

(२३४) 'तप्यति मर्मताडितः।'

(भागवत ४।३।१९)

'तप्यति' अशुद्ध है। 'तप्यते' शुद्ध है 'तप्' वैदिक लौकिक दोनों साहित्यमें सदा आत्मनेपद है।

(२३५) 'च दूयताहृदा... स्त्रैण।'

(भागवत ४।४।३)

(क) दूङ् परितापे आत्मनेपद है इसलिए 'दूयमानेन' होना चाहिए।

(ख) 'स्त्रैण' प्रयोग भी 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' (अष्टा० ४।१।८७) के अनुसार अशुद्ध है।

(२३६) 'करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागणं।'

(भागवत ४।५।११)

'भा' अशुद्ध है। 'भ' प्रयोग शुद्ध है जिसका अर्थ 'तारा' है।

(२३७) 'उत्पेतुरुत्पाततमाः'

(भागवत ४।५।१२)

'उत्पाततमाः' अपाणिनीय है। अष्टाध्यायी ५।३।५५ पर 'बालमनोरमा' देखिए।

(२३८) प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम्।[17]

(भागवत ४।५।२६)

'प्रातिष्ठत्' प्रयोग अशुद्ध है।

(२३९) आशासाना जीवितम्।

(भागवत ४।६।६)

'आशासाना' अशुद्ध है। 'आशासमाना' शुद्ध है।

(२४०) नारदाय प्रवोचन्तम्। (भागवत ४।६।३७)

'प्रवोचन्तम्' अशुद्ध है। 'प्रब्रुवन्तम्' शुद्ध है

(२४१) प्रथमं त्वमस्राक्। (भागवत ४।७।१४)

'अस्राक्' अशुद्ध है। 'अस्राक्षीः' शुद्ध है।

(२४२) ...महित्वात्मभुवादयः।

(भागवत ४।७।२४)

'आत्मभुवादयः' अशुद्ध है। 'आत्मभ्वादयः' बहुव्रीहि समास होना चाहिए।

(२४३) तत्त्वं न ते वयमनञ्जन रुद्रशापत्कर्मण्यवग्रहधियो भगवत् विदामः। धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं ज्ञातं यदर्थमधिदैवमदोव्यवस्थाः।

(भागवत ४।७।२७)

(क) 'विदामः' अशुद्ध है। 'विद्मः' से 'विदामः' आगम कैसे ?

(ख) 'व्यवस्थाः' में 'अवऽभाव' कैसे ?

(२४४) दक्षं बभाष आभाष्य।

(भागवत ४।७।४९)

'बभाष' अशुद्ध है। बभाषे' शुद्ध है।

(२४५) स्वेनैवावाप्रराधसे। (भागवत ४।७।५७)

'राधस्' वैदिक शब्द हैं जो लौकिक साहित्यमें प्रयुक्त नहीं होता है। भागवतकारने अशुद्ध प्रयोग किया है।

(२४६) सुनीतिरुत्सङ्ग उदूह्यबालम्।

(भागवत ४।८।१५)

'उदूह्य' अशुद्ध है। 'उदुह्य' शुद्ध है।

(२४७) तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलम्।

(भागवत ४।९।८)

'आपवर्ग्य' 'स्वार्थिक ष्यञ्' से विशेषण प्रयोग किया गया है जो अपाणिनीय है।

(२४८) यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिषमसत्तमः।

(भागवत ४।९।३२)[18]

'अग्राहिषम्' प्रयोग 'ग्रहोऽलिटिदीर्घः' (अष्टाध्यायी ७।२।३७) के अनुसार अशुद्ध है। 'अग्रहीषम्' होना चाहिए।

---

१७ काशीसंस्करण 'सामयिकी भा. टी.' पृष्ठ ३०५ में श्लोक० २६ नहीं है। यह भयंकर भूल है। मथुरा संस्करण बालबोधिनी भा. टी. पृष्ठ २३८ में तथा गीता प्रेस, गोरखपुर संस्करणमें यह श्लोक है —(लेखक)

१८ मथुरा संस्करण, बालबोधिनी भा. टी. पृष्ठ २५७ में श्लोक सं. ३३ है जब कि सर्वत्र श्लोक सं. ३२ है। –(लेखक)

(२४९) 'वीरवीरसुवोऽमुहुः ।'

(भागवत ४।९।५०)

'वीरसुवः' अशुद्ध है। 'वीरसू' प्रयोग होना चाहिए।

(२५०) 'वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो ।'

(भागवत ४।९।६७)

'प्रातिष्ठत्' अशुद्ध है।

'समवप्रविभ्यः स्थः' (अष्टा० १।३।२२) के अनुसार 'तिष्ठते' होना चाहिए।

(२५१) 'धनुषि प्रयुञ्जतः ।'

(भागवत ४।११।३)

'प्रयुञ्जतः' अशुद्ध है।

'प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु' (अष्टा० १।३।६४) के अनुसार 'प्रयुञ्जानस्य' शुद्ध है।

(२५२) 'तं विचक्ष्य खलं पुत्रं... ।'

(भागवत ४।१३।४२)

'विचक्ष्य' अशुद्ध है। 'विख्याय पाणिनीके 'दृशेविख्ये च' (अष्टा० ३।४।११) के अनुसार होना चाहिए।

(२५३) 'वेनसुवं प्रसुताम् '।

(भागवत ४।१३।४७)

'वेनसुवं' अशुद्ध है। 'वेणस्वम्' शुद्ध है।

(२५४) 'दहिष्यामः स्वतेजसा ।'

(भागवत ४।१४।१३)

'दहिष्यामः' अपाणिनीय है। 'धक्ष्यामः' शुद्ध है।

(२५५) 'स ते मा विनशेद्वीर प्रजानां ।'

(भागवत ४।१४।१६)

'विनशेत्' अशुद्ध है।

'नश्' सदा दिवादि है, अतः 'विनश्येत्' शुद्ध है।

(२५६) 'एकदा मुनयस्ते तु सरस्वत्सलिला-प्लुताः ।

(भागवत ४।१४।३६)

यहाँ 'पुंवद्भाव' कैसे ?

षष्ठी तत्पुरुष समासमें 'पुंवद्भाव' नहीं होता है। यहाँ 'सरस्वत्' पुल्लिंगमें 'सरस्वती' स्त्रीलिंगके बदले है।

(२५७) 'जातो लोकरिरक्षया ।'

(भागवत ४।१५।६)

'रिरक्षया' अशुद्ध है। 'रिरक्षयिषया' शुद्ध है।

(२५८) सूताद्यापिवरीमाभिः । कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥

(भागवत ४।१५।२६)

'वरीमभिः' अशुद्ध है। 'वरीभभिः' होना चाहिए। 'गापयिष्याम' अशुद्ध है। लृट्में विसर्ग लुप्त क्यों है ?

(२५९) कर्माणि वयं वितन्महि ।'

(भागवत ४।१६।३)

'वितन्महि' अशुद्ध है। 'वितन्वीमहि' शुद्ध है।

(२६०) 'यो लीलयाद्रीन् स्वशरासकोट्या ।'

(भागवत ४।१६।२२)

'शरासन' शुद्ध है।

(२६१) 'तदानिलिल्युर्दिशि ।'

(भागवत ४।१६।२३)

'निलिल्युः' अपाणिनीय है। 'निलिल्यिरे' पाणिनीय है।

(२६२) 'अहारषीद्यस्य हयं पुरन्दरं ।'

(भागवत ४।१६।२४)

'अहारषीद्' अशुद्ध है। 'अहार्षीत्' शुद्ध है।

(२६३) वक्तुमर्हसियोऽदुह्यद्वैन्यरूपेण गामिमाम् ।' (भागवत ४।१७।७)

'अदुह्यत्' अशुद्ध है।

'दुह्' अदादिक है, दिवादिक नहीं है अतः 'अधोक्' होगा।

(२६४) 'तन्नो भवानीहतु रातवेऽन्नं ।'

(भागवत ४।१७।११)

'ईहतु' अशुद्ध है।

ईह धातु आत्मनेपदी है अतः 'ईहताम्' प्रयोग शुद्ध है।

(२६५) 'वसुधे त्वां वधिष्यामि... ।'

(भागवत ४।१७।२२)

'वधिष्यामि' अशुद्ध है।

'हनोवधलिङि' (अष्टा० २।४।४२) के अनुसार 'वध' केवल लुङ्, लिङ्में प्रयोग होता है। अतः यहां 'हनिष्यामि' शुद्ध प्रयोग होना चाहिए।

(२६६) वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः।

(भागवत ४।१८।१२)

'अदुहत्' का लुङ्में प्रयोग अशुद्ध है। 'अधुक्षत्' प्रयोग शुद्ध है।

(२६७) 'कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोममदूदुहन्।'
(भागवत ४।१८।१५)

'अदूदुहन्' अपाणिनीय है। 'अधुक्षन्' शुद्ध है।

(२६८) 'सोऽश्वंरूपं च तद्धित्वा तस्मा अन्तर्हितः स्वराट्।' (भागवत ४।१९।१७)

'तस्मा अन्तर्हितः' चतुर्थीकारक अशुद्ध है। टीकाकार पं. श्रीधरजीका निर्णय हास्योत्पादक है।

(२६९) 'तत्तस्य चाद्भुतंकर्म विचक्ष्य परमर्षयः।'
(भागवत ४।१९।१८)

'विचक्ष्य' अशुद्ध है। 'विख्याय' होना चाहिए।

(२७०) 'तदिदं पश्यत महद्धर्मव्यतिकरं द्विजाः।'
(भागवत ४।१९।३१)

'इदं' अशुद्ध है। 'इमम्' होना चाहिए।

(२७१) 'क्रतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः।'
(भागवत ४।१९।३५)

'विरमताम्' अशुद्ध है।

'व्याङ्परिभ्यो रमः' (अष्टा० १।३।८३) के अनुसार 'विरमतु' शुद्ध है।

(२७२) '... प्रजापतेसङ्कल्पनं विश्वसृजां पिपीपृहि।' (भागवत ४।१९।३८)

'पिपीपृहि' अशुद्ध है।

पृ पालनपूरणयोः से 'पिपृहिः' पाठ शुद्ध है।

(२७३) 'एष तेऽकारषीद्भङ्गं।'
(भागवत ४।२०।२)

'अकारषीत्' अशुद्ध है। 'अकार्षीत्' शुद्ध है।

(२७४) 'अनुशासित आदेशं शिरसाजगृहे हरेः।'
(भागवत ४।२०।१७)

'अनुशासितः' अपाणिनीय है। 'अनुशिष्टः' पाणिनीय है।

(२७५) 'रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक्।' (भागवत ४।२१।२२)

'स्थापिता' अशुद्ध है। 'स्थापयिता' शुद्ध है।

(२७६) सद्यःक्षिणोत्यन्वहमेधतीसती...।'
(भागवत ४।२१।३१)

'एधती' अशुद्ध है। 'एधमाना' प्रयोग शुद्ध है।

(२७७) 'नात्यद्भुतमिदं नाथ तवाजीव्यानुशासनम्।' (भागवत ४।२१।५०)

'आजीव्यानुशासनम्' में सन्धि अशुद्ध है।

(२७८) 'न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्गं
तमस्तीव्रंतितीरिषुः।'
(भागवत ४।२२।३४)

'तितीरिषुः' अशुद्ध है। 'तितीर्षुः' प्रयोग शुद्ध है।

(२७९) 'कृच्छ्रोमहानिह भवार्णवमप्लवेशां
षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरिषन्ति। तत्-
त्वंहरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं
कृत्वोडुपंव्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्।'
(भागवत ४।२२।४०)

(क) तितीरषन्ति' अशुद्ध है। 'तितीर्षन्ति' शुद्ध है।

(ख) 'दुस्तरार्णम्' अशुद्ध है।

(२८०) 'भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा।' (भागवत ४।२३।१०)

'यततः' अशुद्ध है। 'यतमानस्य' शुद्ध है।

(२८१) 'विसिसृक्ष्यू राजपुत्रास्ते।'
(भागवत ४।२४।२३)

'विसिसृक्ष्यूः' अशुद्ध है।

'अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (अष्टा० १।३।१२)के अनुसार ष्णिङ् ईश्वहतने आत्मनेपदी है। अतः 'विसिष्णिष्यिरे' शुद्ध है।

(२८२) 'नम ऊर्जइषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे।'
(भागवत ४।२४।३८)

'पतये' अपाणिनीय है।

'षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा' (अष्टा० १।४।९)के अनुसार 'पत्ये' शुद्ध रूप है।

(२८३) 'नमोवाचोविभूतये।'
(भागवत ४।२४।४३)

यह अपाणिनीय प्रयोग है, अलुक समास है।

(२८४) 'विकर्षसि त्वं खलुकालयानः ।'
(भागवत ४।२४।६५)

'कालयानः' अशुद्ध है। 'कालयमानः' शुद्ध है।

(२८५) 'समाहितधियः सर्वं एतदभ्यसताहताः।'
(भागवत ४।२४।७१)

'अभ्यसत' अपाणिनीय है। 'अभ्यस्यत' शुद्ध है।

(२८६) 'अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्षवो विविधाः प्रजाः।' (भागवत ४।२४।७३)

'सिसृक्षवः' अशुद्ध है। 'सिसृक्षमाणः' शुद्ध है।

(२८७) 'विन्दते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसत्वरम्।' (भागवत ४।२४।७७)

'असत्वरम्' गीताप्रेस, पण्डित-पुस्तकालय, मथुरा संस्करणमें यह प्रयोग अशुद्ध है।

'असत्वरम्' पाठ शुद्ध है।

(२८८) 'संज्ञापिताञ्जीवसङ्घान्निर्घृणेन सहस्रशः।'
(भागवत ४।२५।७)

'संज्ञापितान्' अपाणिनीय है। 'संज्ञपितान्' शुद्ध है।

(२८९) 'प्राकारोपवनाट्टालपरिखैरक्षतोरणैः।'
(भागवत ४।२५।१४)

'परिखैः' अशुद्ध है। यहाँ 'पुंवद्भाव' कैसे? 'परिखाभिः' (स्त्रीलिंग) शुद्ध है।

(२९०) 'हिमनिर्झरविप्रुष्मत्कुसुमाकरवायुना।'
(भागवत ४।२५।१८)

'विप्रुष्मता' अशुद्ध है। 'विप्रुण्वता' शुद्ध है।

(२९१) 'एता वा ललनाः सुभ्रु कोऽयं तेऽहिः पुरः सरः।' (भागवत ४।२५।२७)

'सुभ्रु' अपाणिनीय है।

'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' (अष्टा० ७।३।१०७) के अनुसार अशुद्ध है।

(२९२) 'न विदाम वयम् ...।'
(भागवत ४।२५।३३)

'विदाम' अशुद्ध है। 'विद्मः' (लट्में) होना चाहिए।

(२९३) 'उद्वहिष्यामि तांस्तेऽहम्...।'
(भागवत ४।२५।३६)

'उद्वहिष्यामि' अपाणिनीय है।
लृट्में 'उद्वक्ष्यामि' होना चाहिए।

(२९४) 'शयानायामन्वास्ते कच्चिदासतीम्।'
(भागवत ४।२५।५९)

'अन्वास्ते' अशुद्ध है। 'आसीनाम्' 'ईदासः' (अष्टा० ७।२।८३) के अनुसार शुद्ध हैं। धातु आत्मनेपदी है।

(२९५) '... वाचा हृदयेन विदूयता।'
(भागवत ४।२६।१९)

'विदूयता' अप्रचलित व अशुद्ध है। 'विदूयमानेन' होना चाहिए।

(२९६) 'पुरञ्जनी महाराजरेमेरमयती पतिम्।'
(भागवत ४।२७।१)

'रमयती' अशुद्ध है। 'रमयन्ती' होना चाहिए।

(२९७) '... पौरञ्जन्यः प्रजापते।'
(भागवत ४।२७।७)

'पौरञ्जनीः' पाठ समीचीन है।

(२९८) 'कथं नु दारकादीना दारकीर्वा परायणाः।' (भागवत ४।२८।२१)

'दारकी' प्रयोग पाणिनीके 'प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः' (अष्टा० ७।३।४४) के अनुसार अशुद्ध है। 'दारिका' होना चाहिए।

(२९९) '... मां येनाग्रे विचचर्थेह।'
(भागवत ४।२८।५२)

चर गतौ भक्षणेऽपि, द्वितीय पुरुष, एकवचनसे 'विचचर्थ' बना है।

'थलिचसेटि' (अष्टा० ६।४।१२१) के अनुसार 'विचेरिथ' प्रयोग शुद्ध है।

(३००) 'अपिस्मरसि चात्मानमविज्ञातसखं सखे।' (भागवत ४।२८।५३)

'राजाहः सखिभ्यष्टच्', अष्टाध्यायीके सूत्रसे यहाँ 'अविज्ञातसखम्' बहुव्रीहिसमास अशुद्ध है।

(३०१) '... चित्रमन्धो बहूदनम्।'
(भागवत ४।२९।१२)

'बहूदनम्' अशुद्ध है। 'बह्वोदनम्' शुद्ध है।

(३०२) '... उच्चावचपथाभ्रमन्।'
(भागवत ४।२९।३१)

×

'उच्चावचपया' अशुद्ध है। 'उच्चावचपथेन' होना चाहिए।

(३०३) 'शृण्वतः श्रद्दधानस्यनित्यदास्याद-धीयतः।' (भागवत ४।२९।३८)

'अधीयतः' अशुद्ध है।

'अधि इङ्‌अध्ययने (धातुपाठ १०४६) आत्मनेपद है। इसलिए 'अधीयानस्य' पाठ शुद्ध है।

(३०४) 'स त्वं विचक्ष्य ...।'
(भागवत ४।२९।५५)

'विचक्ष्य' अपाणिनीय है।

'चक्षिङः ख्याञ्' (अष्टा० २।४।५४) के अनुसार 'विख्याय' शुद्ध है।

(३०५) 'काशिष्णुना ...।'
(भागवत ४।३०।६)

'अलंकृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतु वृधु-सहचर इष्णुच् (अष्टा० ३।२।१३६) के अनुसार 'काशि-ष्णुना:' पाठ अशुद्ध है।

(३०६) 'देशिनीं रोदमानाया निदधे स दया-न्वितः।' (भागवत ४।३०।१४)

'रोदमानाया' अशुद्ध है।

'रुदिर् अश्रुविमोचने' परस्मैपदीसे 'रुदत्याः' प्रयोग उचित है।

(३०७) 'येनोपशान्तिर्भूतानां क्षुल्लकानामपी-हताम्।' (भागवत ४।३०।२९)

'ईहताम्' अपाणिनीय है।

'ईहमानानाम्' प्रयोग पाणिनीय है।

क्रिया ईह चेष्टायाम् आत्मनेपदी (धातुपाठ ६३२) है।

(३०८) 'इति प्रचेतसां पृष्टो भगवान्नारदो मुनिः।'
(भागवत ४।३१।८)

'प्रचेतसां पृष्टः' में सम्बन्धकारक अशुद्ध है। यहाँ करणकारक होना चाहिए।

(३०९) 'स्वानां दिदृक्षुः प्रययौ ज्ञातीनां निर्वृ-ताशयः।' (भागवत ४।३१।३०)

'स्वानां ज्ञातीनाम्' में सम्बन्धकारक अशुद्ध है।

'न लोकाव्यय' (अष्टा० २।३।६९) के अनुसार 'स्वान् ज्ञातीन्' होना चाहिए जो दिदृक्षुः में उप्रत्ययः द्वारा षष्ठी समास है।

स्कन्ध ५

(३१०) 'वयं भवस्ते तत एष महर्षिर्वहाम सर्वे विवशा यस्यदिष्टम्।'
(भागवत ५।१।११)

'वहाम' अशुद्ध है। लट्में 'वहामः' होना चाहिए।

(३११) '... विहन्तुं तनुभृद्भिभूयात्।'
(भागवत ५।१।१२)

'विभूयात्' अशुद्ध है। 'आशीर्लिङ्' अशुद्ध है। यहाँ विधिलिङ्के अनुसार 'विभवेत्' शुद्ध होगा।

(३१२) यथानुभूतं प्रतियातनिद्रः किं त्वन्य-देहाय गुणान्न वृङ्क्ते।'
(भागवत ५।१।१६)

'वृङ्क्ते' अशुद्ध है। 'वृणीते' शुद्ध है।

(३१३) '... आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य।'
(भागवत ५।१।२६)

'अर्भभावात्' अशुद्ध है। 'अर्भकभावात्' शुद्ध है।

(३१४) '... यौषिण्यम्...।'
(भागवत ५।१।२९)

'यौषिण्यम्' अशुद्ध है। 'योषत्' शुद्ध है।

(३१५) '... प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाण...।'
(भागवत ५।२।१)

'धर्मावेक्षमाणः' में समास अपाणिनीय है। 'धर्मम्' या धर्मेण उपपद नहीं है, 'अवेक्षमाणः' तिङन्त है, अतः यहाँ समास असम्भव है।

(३१६) '... विकचय्य व्यचष्ट।'
(भागवत ५।२।५)

'विकचय्य' अशुद्ध है। 'विकच' से क्रियापद संज्ञा है। 'विकचयित्वा' होना चाहिए।

(३१७) 'कस्मै युयुङ्क्षसिवने विचरन्...।'
(भागवत ५।२।८)

'युयुङ्क्षसि' अपाणिनीय है। 'युयुक्षि' पाणिनीय है।

(३१८) '... शृणुवाम तुभ्यम् ।'
(भागवत ५।२।१०)

'तुभ्यम्' अशुद्ध है। 'तव' शुद्ध है।

(३१९) '... आसन्नभृङ्गनिकरं सर इन्मुखं[19] ते।'
(भागवत ५।२।१३)

टीकाकार पं. श्रीधरके अनुसार 'इत् = इव, परन्तु वेदों व निरुक्तके अनुसार अशुद्ध है। 'इत्' पदपूरणम् है।

(३२०) '... एजयतेऽक्षिणी... ।'
(भागवत ५।२।१४)

'एजयतेऽक्षिणी' में सन्धि अशुद्ध है।

(३२१) 'चर्तुं तपोऽर्हसि मयासह... ।'
(भागवत ५।२।१५)

'चर्तुम्' अशुद्ध है।
चर सेट धातु है। अतः 'चरितुम्' पाठ शुद्ध है।

(३२२) '...यतः प्रतिसरन्तु शिवाः सचिव्यः।'
(भागवत ५।२।१६)

'सचिव्यः' अशुद्ध है। 'सचिवाः' शुद्ध है।

(३२३) 'अर्वाक्तनाभिर्निरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ।'
(भागवत ५।३।४)

'अर्वाक्तनाभिः' अशुद्ध है। 'अर्वाक्तनीभिः' शुद्ध है।
पाणिनीके 'टिड्ढाणञ् द्वयसज् दघ्नञ् मात्रच् तयप् ठक्ठञ्कञ्क्वरपः' (अष्टा० ४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग रूपके लिए ङीप् आवश्यक है। 'सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौतुट् च' (अष्टा० ४।३।२३) के अनुसार शब्दका रूप बना है।

(३२४) '.. गृहीत नरलोक स धर्मं भगवन्तम्।
(भागवत ५।४।४)

'गृहीतनरलोक स धर्मं भगवन्तम्' में 'समासके मध्यमें 'सधर्म' शब्द अपाणिनीय है, क्योंकि 'स धर्म' विशेषण और एक बहुव्रीहि समास है इसलिए यहाँ 'स' व्यर्थ है और यह रूप अशुद्ध है।

(३२५) '...गृहेषु लोकं नियमयत् ।'
(भागवत ५।४।१४)

'नियमयत्' अशुद्ध है। 'न्ययमयत्' शुद्ध है।

(३२६) '...यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।'
(भागवत ५।५।४)

'आपृणोति' अशुद्ध है। 'आप्रियते' शुद्ध रूप है।

(३२७) '...सर्वं महीयांसममुं सनाभम् ।'
(भागवत ५।५।२०)

'सनाभम्' अपाणिनी· है।
ज्योतिर्जन पदरात्री नाभिनामगोत्र रूपस्थान वर्णवयोवचन बन्धुषु' (अष्टा० ६।३।८५) के अनुसार 'सनाभिम्' शुद्ध है।

(३२८) 'देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना... ।'
(भागवत ५.५।२२)

'देवासुरेभ्यः' में सन्धिकार्य अशुद्ध है।
'देवा असुरेभ्यः' शुद्ध है।

(३२९) 'विमोक्तुमीशेत् ।'
(भागवत ५।५।२७)

'ईशेत्' अशुद्ध है। 'ईश-धातु 'अदादिगणीय' और सदा आत्मनेपदी है अतः 'ईशीत' शुद्ध है।

(३३०) खादत्यत्रमेहति हृदति स्म चेष्टमान ।
(भागवत ५।५।३२)

'हृदति' अशुद्ध है। हद (धातुपाठ ९७७) से बनता है। धातु आत्मनेपदी है।

(३३१) 'विश्रम्भमनवस्थानस्य शठकिरात-इव सङ्गच्छन्ते।
(भागवत ५।६।२)

'सङ्गच्छन्ते' अपाणिनीय है।
सम् + गम् 'समोगम्यृच्छिभ्याम्' (अष्टा० १।३।२९) के अनुसार आत्मनेपद है और अकर्मक है, परन्तु 'विश्रम्भम्' यहाँ कर्म है।
'सङ्गच्छते' शुद्ध है।

(३३२) '...भगवदीयत्वेनैव... ।'
(भागवत ५।६।१७)

'भगवदीय' अशुद्ध है।

---

१९ 'इन्मुखं' पाठ उचित है। 'पण्डित-पुस्तकालय, काशी संस्करण, सान्वयिकी भा. टी. पृष्ठ ४२८ में 'उन्मुखं' पाठ है जो अशुद्ध है।
'इन्मुखं' पाठ मथुरा संस्करण, बालबोधिनी भा. टी. पृष्ठ ३४८ तथा गीताप्रेस गोरखपुर संस्करणमें है। काशी संस्करणवालोंकी भयंकर भूल है। —(लेखक)

(३३३) 'सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टेहंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः।'
(भागवत ५।७।१४)

'गृध्राणम्' अशुद्ध है। 'गृध्यन्तम्' शुद्ध है।
'नृषद्रिङ्गिराम्' में 'रिङ्गिराम्' अशुद्ध है। 'रिङ्गिरम्' शुद्ध है।

(३३४) '...मृतमातरमित्याश्रमपदमनयत्।'
(भागवत ५।८।७)

'नद्यृतश्च' (अष्टा० ५।४।१५३) के अनुसार 'मृतमातृकः' शुद्ध है।

(३३५) '...अनसूयुनाऽनुष्ठेयं।'
(भागवत ५।८।९)[२०]

'अनसूयुः' प्रयोग 'सनाशंसभिक्ष उः' (अष्टाध्यायी ३।२।१६८) के अनुसार अशुद्ध है।

(३३६) '...स्यादधिगम्यमध्वा...।'
(भागवत ५।१०।९)

'अधिगम्यम्' नपुंसकलिंग अव्यवस्थित है, क्योंकि 'अध्वा' पुंलिंग है।

(३३७) '...साम्येन वीताभिमतेस्तथापि।'
(भागवत ५।१०।२५)

'अभिमतिः' = 'अभिमान' अर्थमें प्रयुक्त है। यह शब्द अस्पष्ट है और प्रायः लौकिक साहित्यमें नहीं पाया जाता है।

(३३८) '...परस्परं चालपते निरन्धः।'
(भागवत ५।१३।६)

'आलपते' अशुद्ध है 'आलपति' शुद्ध है।

(३३९) 'याचन्परादप्रतिलब्धकामः।'
(भागवत ५।१३।१२)

'याचन्' अशुद्ध है। 'याचमानः' शुद्ध है।
याच् उभयपदी है 'पर' सर्वनाम है। इसलिए 'पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा' (अष्टा० ७।१।१६) के अनुसार 'याचमानः' होगा।

(३४०) 'क्वचिदुकदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्।'
(भागवत ५।१३।१६)

'त्रसन्' अशुद्ध है। 'त्रस्यन्' शुद्ध है।

(३४१) इत्येवमुत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षिसुतः...।'
(भागवत ५।१३।२४)

'उत्तरामातः' अशुद्ध है। 'उत्तरामातृक' सम्बोधन कारकमें शुद्ध है।

(३४२) '...कामान् दुदूहुः...।'
(भागवत ५।१५।११)

'दुदूहुः' अशुद्ध है। 'दुदुहुः' शुद्ध है।

(३४३) ...सर्वंविजिज्ञासामि।'
(भागवत ५।१६।२)

'विजिज्ञासामि' अशुद्ध है। 'विजिज्ञासे' पाणिनीके 'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः' (अष्टा० १।३।५७) के अनुसार उचित है।

(३४४) 'भजे भजन्यारणपादपङ्कजं।'
(भागवत ५।१७।१८)

'भजन्य' अशुद्ध है। 'भजनीय' शुद्ध है।

(३४५) 'यमनन्तमृषयः।'
(भागवत ५।१७।२१)

'ऋषयः' अशुद्ध है। 'ऋषयः' शुद्ध है।

(३४६) 'यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्म पर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्ग मां हितः।
(भागवत ५।१७।२४)

'कर्मपर्वणीम्' अपाणिनीय है।
'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' (अष्टा० ६।४।८२) के अनुसार 'कर्मपर्वण्यम्' होना चाहिए।

(३४७) 'पितरं जिजीविषति।'
(भागवत ५।१८।३)

'जिजीविषति' अपाणिनीय है।

(३४८) 'या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं निकामयेत्...।'
(भागवत ५।१८।२१)

---

२० पण्डित पुस्तकालय, काशी संस्करण, सात्वतिकी भा. टी., पृष्ठ ४४५ में 'सू' मुद्रित नहीं है। मथुरा संस्करण, पृष्ठ ३६३ में तथा गीता प्रेस, गोरखपुरमें शुद्ध है। —(लेखक)

'निकामयेत्' अशुद्ध है। 'कर्त्तरि णिङ्' (अष्टा० ३।१।३०) के अनुसार 'निकामयेत' शुद्ध है। धातु आत्मनेपद है।

(३४९) 'मथ्नन्ति मथ्ना मनसा...।'
(भागवत ५।१८।३६)

'मथ्ना' अपाणिनीय है।

'पथिमथ्यृभुक्षामात्' (अष्टा० ७।१।८५) के अनुसार 'मथा' शुद्ध है।

(३५०) 'माया यथायो भ्रमते...।'
(भागवत ५।१८।३८)

'भ्रमते' अशुद्ध है। 'भ्रमति' (परस्मैपद) शुद्ध है।

(३५१) प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये।'
(भागवत ५।१९।४)

'उपलम्भनम्' ल्युट्कर्मणिके साथ यह प्रयोग अशुद्ध है। 'उपलभ्यम्' शुद्ध है।

(३५२) 'कुतोऽन्यथास्या रमतः स्व आत्मनः।
(भागवत ५।१९।५)

'रम' धातु नित्य आत्मनेपदी हैं। अतः 'शानच्से 'रममाणस्य' होगा। 'रमतः' अशुद्ध है।

(३५३) 'ते भूमो वनौका इव यान्ति वन्धनम्।'
(भागवत ५।१९।२५)

'वनौका' अशुद्ध है। 'वनौकसः' शुद्ध पाठ है।

(३५४) 'एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा...।'
(भागवत ५।१९।२६)

'आहुतः' अशुद्ध है। 'आहूतः' शुद्ध है।

(३५५) 'आपोमयं देवमपां...।'
(भागवत ५।२०।२२)

'आपोमयम्' अशुद्ध है। 'अम्मयम्' शुद्ध है।

(३५६) 'भयमाशंसते।' (भागवत ५।२२।१३)

'आशंसते' अशुद्ध है। 'आशंसति' शुद्ध है। शंस धातु परस्मैपदी है।

(३५७) 'अमृजितकषायः।' (भागवत ५।२४।२६)

'मृजूष् शुद्धौ (१०६६ धातु पाठ) वेट् है क्योंकि धातु पाठमें यह ऊदित् पढा जाता है इसलिए 'यस्य विभाषा' (अष्टा० ७।२।१५) के अनुसार 'अमृष्ट' होना चाहिए।

(३५८) 'सहस्र शीर्षाणां फणासु—।'
(भागवत ५।२४।११)

'शीर्षाणां' अशुद्ध है। 'शीर्ष्णां' शुद्ध है।

'शीर्षन्' 'शीर्षंश्छन्दसि' (अष्टा० ६।१।५९) के अनुसार केवल वेदोंमें व्यवहार किया जाता है।

टीकाकार पं. श्रीधरका उच्चारण अशुद्ध है।

(३५९) 'प्रलम्भनाद्धा।' (भागवत ५।२५।११)

'प्रलम्भः' यहाँ 'परिहासः' (हँसी) के अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। यह प्रयोग संस्कृत साहित्यमें अज्ञात है।

(३६०) 'कृमिकुण्डे कृमिभूत...।'
(भागवत ५।२६।१८)

'कृमिभूतः' पाणिनीके 'च्वौच' (अष्टा० ७।४।२६) के अनुसार अपाणिनीय है।

(३६१) '... भागण लोक संस्था।'
(भागवत ५।२६।४०)

'भागण' अशुद्ध है। 'भगण' (तारागण) शुद्ध है।

स्कन्ध ६

(३६२) 'विप्रां स्वभार्यामप्रौढां कुले महति लम्भिताम्।' (भागवत ६।१।६५)

'लम्भिताम्' = 'परिणीताम्'

'लम्भिताम्' एक अव्यवहारिक व अप्रचलित शब्द है।

(३६३) 'अहोकष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम्।' (भागवत ६।२।२)

'स्पृशते' अशुद्ध है। 'स्पृशति' शुद्ध है जो स्पृश धातु, तुदादि, परस्मैपदीसे बना है।

(३६४) 'यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया।'
(भागवत ६।२।१९)

'वीर्यतमम्' अशुद्ध है। 'वीर्यवत्तमम्' होना चाहिए।

(३६५) 'यमराज्ञे यथा सर्वमाचचक्षुररिन्दम।'
(भागवत ६।२।२१)

'यमराज्ञे', 'आचचक्षुः' दोनोंही प्रयोग अशुद्ध हैं।

(क) 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' (अष्टा० ५।४।९१) के अनुसार 'यमराजाय' शुद्ध है।

(ख) 'आचचक्षिरे' शुद्ध है। धातु चक्षिङ् है जो ङित्करणमके कारण आत्मनेपद है।

(३६६) '...वृषल्यां जायताऽऽत्मना।'
(भागवत ६।२।२६)

'जायता' अशुद्ध है। 'जायमानेन' शुद्ध है।

(३६७) 'मा भैष्टेत्यायुर्द्रुतम्।'
(भागवत ६।३।१०)

'मा भैः' अशुद्ध है।

'मा माङ्योगे' (अष्टा० ६।४।७४) के अनुसार 'मा भैषीः' होना चाहिए।

(३६८) 'तत् क्षम्यतां स भगवान् पुरुषः।'

(भागवत ६।३।३०)

'क्षम्यताम्' अपाणिनीय है। 'क्षमताम्' पाणिनीय है।

(३६९) 'कथं तदनुरूपाय गुणविश्रम्भ्युपक्रमेत्'

(भागवत ६।५।२०)

'उपक्रमेत्' अशुद्ध है। पाणिनीके 'प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्' (अष्टा० १।३।४२) सूत्रके अनुसार 'उपक्रमेत' होना चाहिए।

(३७०) 'अखण्डचित्तमविश्य लोकाननुचरन्मुनिः।'

(भागवत ६।५।२२)

'अनुचरत्' अशुद्ध है। 'अन्वचरत्' शुद्ध है।

(३७१) '...ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजन्तः।'

(भागवत ६।९।२१)

'उद्विजन्त' अशुद्ध है। 'उद्विजमानाः' शुद्ध है। ओ विजी भयचलनयोः (धातुपाठ १२८९) आत्मनेपद है।

(३७२) 'वयं न यस्यापि पुरःसमीहतः पश्याम लिङ्गं पृथगीशमानिनः।'

(भागवत ६।९।२५)

'समीहतः' अशुद्ध है। 'समीहमानस्य' शुद्ध है, क्योंकि ईह आत्मनेपदी है।

(३७३) 'चिक्षेप तामापततीं सुदुःसहां जग्राह...।'

(भागवत ६।११।९)

'आपततीम्' अशुद्ध है। 'आपतन्तीम्' शुद्ध है।

(३७४) 'युयुत्सतां कुत्रचिदाततायिनां...।'

(भागवत ६।१२।७)

'युयुत्सताम्' अशुद्ध है। युध आत्मनेपदी है, इसलिए पाणिनीके 'पूर्ववत् सनः' (अष्टा० १।३।६२) के अनुसार 'युयुत्समानानाम्' होगा।

(३७५) 'एवं सञ्चोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम्।'[२१]

(भागवत ६।१३।१०)

'अहनत्' अशुद्ध है। 'अहन्' शुद्ध है।

(३७६) 'स्वस्त्ययनं तथायुषम्।'

(भागवत ६।१३.२३)

'आयुषम्' अशुद्ध है. 'तस्मैहितम्' (अष्टा० ५।१।५) के अनुसार 'आयुष्यम्' शुद्ध है।

(३७७) 'दारे प्रजापतिः।'

(भागवत ६।१४.३८)

'दार' एकवचनमें प्रयोग अशुद्ध है। 'दार' शब्द नित्य बहुवचन होता है अतः 'दारेषु' होना चाहिए।

(३७८) 'भूमण्डलं सर्षपायतियस्य मूर्ध्नि तस्मै नमो...।'

(भागवत ६।१६।४८)

'सर्षपायति' अशुद्ध है।

'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' (अष्टा० ३।१।११) के अनुसार 'सर्षपायते' शुद्ध है।

(३७९) 'जगाम स्वविमानेन पश्यतोः स्मयतोस्तयोः।'

(भागवत ६।१७।२५)

'स्मयतोः' अशुद्ध है। 'स्मयमानयोः' शुद्ध है, क्योंकि ष्मिङ् ईषद्धसने (धातुपाठ ९४८) आत्मनेपदी है।

(३८०) 'गुणदोष विकल्पश्च भिदेव स्रजिवत्कृतः।'

(भागवत ६।१७।३०)

'स्रजिवत्' अशुद्ध है।

'तत्रतस्येव' (अष्टा० ५।१।११६) के अनुसार स्रजीव' शुद्ध है।

(३८१) 'इति भागवतो देव्याः प्रतिशप्तुमलन्तमः।'

(भागवत ६।१७।३७)

'अलन्तमः' अशुद्ध है।

'किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे' (अष्टा० ५।४।११) के अनुसार 'अलन्तमाम्' शुद्ध है।

---

२१ 'पण्डित पुस्तकालय, काशी संस्करण, समाधिकी, भा. टी. में अनहद्' अशुद्ध मुद्रित पाठ है, वहाँ 'अहनद्' होना चाहिए। मथुरा संस्करण, बालबोधिनी भा. टी. पृष्ठ ४७५ में तथा अन्य संस्करणोंमें अहनद्' पाठही है। —(लेखक)

(३८२) 'य एतत्... इतिहासं हरिं स्मृत्वा...।'
(भागवत० ६।१७।४१)

'एतत्' अशुद्ध है। 'इतिहास' पुल्लिङ्ग है अतः 'एतम्' शुद्ध रूप होगा।

(३८३) 'स्त्रिया भर्तरि सुप्रीतेः काम इव चागमः।'
(भागवत ६।१८।३२)

'आगमः' अशुद्ध है। 'आगम्यः' शुद्ध है।

(३८४) '...सप्तधानापि मम्रिरे।'
(भागवत ६।१८।७२)

'मम्रिरे' अशुद्ध है।

'म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च (अष्टा. १।३।६१) के अनुसार 'मम्रुः' शुद्ध है

(३८५) 'शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद् भर्तुरनुज्ञया।'
(भागवत ६।१९।२)

'मार्गशिरे' अशुद्ध है। 'मार्गशिरसि' या 'मार्गशीर्षे' शुद्ध है।

(३८६) 'रजस्तमस्कान् प्रमिणोत्युरुश्रवाः।'
(भागवत ७।१।११)

'प्रमिणोति' अशुद्ध है।

'मीनातेर्निगमे' (अष्टा० ७।३।८१) के अनुसार 'प्रमीणाति' शुद्ध है।

(३८७) 'तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये।'
(भागवत ७।१।४४)

'न्यहनत्' अशुद्ध है। हन् धातुके लङ्में 'न्यहन्' शुद्ध है।

(३८८) 'तत्रानुयानं तव वीर पादयोः शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि।'
(भागवत ७।२।३४)

'शुश्रूषतीनाम्' अशुद्ध है।

'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः' (अष्टा० १।३।५७) के अनुसार 'शुश्रूषमाणानाम्' शुद्ध है। 'श्रु धातु आत्मनेपद है।

(३८९) 'ततः शोचत मा यूयं परं...।'
(भागवत ७।२।६०)

'अशोचत' में 'अडागम' कैसे ?

(३९०) '...देवो भक्षिताङ्गं पिपीलिकैः।'
(भागवत ७।३।२२)

'पिपीलिका' सर्वदास्त्रीलिङ्ग है। यहाँ पुल्लिङ्गका प्रयोग अशुद्ध है।

(३९१) 'सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन्...।'
(भागवत ७।४।६)

'विद्याध्रान्' अशुद्ध है। 'विद्याधरान्' होना चाहिए।

(३९२) 'मद्दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये'।
(भागवत ७।४।२५)

'श्रेयोपपत्तये' में सन्धिकार्य अपाणिनीय है।

'श्रेय उपपत्तये' होना चाहिए।

(३९३) 'यस्मिन् महद्गुणा राजन् गृह्यन्ते कविभिर्मुहुः।'
(भागवत ७।४।३४)

'महद्गुणाः' अशुद्ध है।

'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' (अष्टाध्यायी ६।३।४६) के अनुसार "महागुणाः' होना चाहिए।

(३९४) '...यदशिक्षद् गुरोर्भवान्।'
(भागवत ७।५।२२)

'अशिक्षत्' अशुद्ध है

'शिक्ष' (धातुपाठ ६०५) आत्मनेपदी है इसलिए 'अशिक्षत' होना चाहिए

(३९५) 'नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन् नियच्छ मन्युं कदृदाः स्म मानः।'
(भागवत ७।५।२८)

(क) यहाँ 'स्म' के योगमें 'अडागम' कैसे ?

(ख) 'कत्' अशुद्ध है। 'कु' शुद्ध है।

(३९६) 'वध्यतामाश्वयं वध्यो निःसारयत नैर्ऋताः।'
(भागवत ७।५।३४)

'वध्यताम्' अशुद्ध है। 'हन्यताम्' होना चाहिए, क्योंकि अलग वध धातु नहीं है

'हनश्चवधः' (अष्टा० ३।३।७६) पर 'बालमनोरमा' का कथन है कि

'वस्तुतो वधिः स्वतन्त्रो नास्त्येव इति शब्देन्दुशेखरे।'

(३९७) 'सौहृदं दुस्त्यजं पित्रोरहाद्यः पञ्चहायनः।'
(भागवत ७।५।३६)

'अहात्' अशुद्ध है। 'अजहात्' शुद्ध है।

ओहाक् त्यागे 'जुहोत्यादि' है।

(३९८) 'आसीनं चाहनञ्छूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु। (भागवत ७।५।४०)

'अहनन्' अशुद्ध है। 'अघ्नन्' शुद्ध है।

(३९९) 'स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम्।' (भागवत ७।६।९)

'विमोचितुम्' अशुद्ध है। 'विमोचयितुम्' शुद्ध है, मुच् (चुरादि) १७४४ धातुपाठ सेट् है। यदि धातुको मुच्लृ तुदादि लिया जाय तब यह अनिट् है और 'विमोक्तुम्' होगा।

(४००) 'पुत्रान् स्मरंस्ता दुहितृर्हृदय्या भ्रातॄन्।' (भागवत ७।६।१२)

'हृदय्याः' अशुद्ध है। 'हृद्याः' शुद्ध है।

(४०१) 'त्यजेत कोशस्कृदिवेहमानः ...।' (भागवत ७।६।१३)

'कोशस्कृत्' अशुद्ध है। 'कोशकृत' शुद्ध है।

(४०२) '... स मुक्तसङ्गैरिषितोऽपवर्गः।' (भागवत ७।६।१८)

'इषितः' अशुद्ध है। 'इष्टः' शुद्ध है।

इषु (तुदादि) वेट् है।

(४०३) 'स वै देहस्तु पारक्यो...।' (भागवत ७।७।४३)

'पारक्यः' अशुद्ध है। 'पारक्य' शुद्ध है।

(४०४) '...येनाण्डकटाहमस्फुटत्।' (भागवत ७।८।१६)

'कटाहम्' पुंल्लिंग है। यहाँ नपुंसकलिङ्गमें प्रयोग अशुद्ध है।

(४०५) 'ततोऽभिपद्याभ्यहनन्महासुरो...।' (भागवत ७।८।२५)

'अभ्यहनन्' अशुद्ध है। 'अभ्यहन्' शुद्ध है।

(४०६) 'तद्दृष्टिविमुष्टरोचिषः।' (भागवत ७।८।३२)

'मुष्ट' अशुद्ध है।

मुषस्तेये क्र्यादि, धातु सेट् है इसलिए 'मुषित' शुद्ध है। महाकवि भवभूतिने 'मुषिताः स्थ परिभूताः स्थ रामहतकेन' (उत्तररामचरितम् अंक १) में 'मुषिताः' प्रयोग किया है।

(४०७) 'प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदातिपीडिता।' (भागवत ७।८।३३)

'प्रोत्सर्पत' अशुद्ध है।

(४०८) '...दिदृक्षतां सङ्कुलमास नाकिनाम्।' (भागवत ७।८।३६)

'दिदृक्षताम्' अशुद्ध है।'

'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः' (अष्टा० १।३।५७) के अनुसार 'दिदृक्षमाणानाम्' शुद्ध है।

(४०९) 'गन्धर्वाप्सरचारणाः।' (भागवत ७।८।३८)

'अप्सर' अशुद्ध है।

(४१०) 'ईडिरे नरशार्दूलं नातिदूरचराः पृथक्।' (भागवत ७।८।३९)[22]

'ईडिरे' अपाणिनीय है।

ईडस्तुतौ; अदादि है परन्तु रूप लिट्में होनेसे अशुद्ध है।

(४११) 'कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते मुक्तिस्तेषां...।' (भागवत ७।८।४२)

'शुश्रूषताम्' अशुद्ध है। 'शुश्रूषमाणानाम्' पाणिनीके 'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः' (अष्टा० १।३।५७) के अनुसार शुद्ध है।

(४१२) '... येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज।' (भागवत ७।८।४३)

'ससर्ज' अशुद्ध है।

'विभाषा सृजिदृशोः' (अष्टा० ७।२।६५) के अनुसार 'ससर्जिथ' शुद्ध है।

(४१३) '...योगसिद्धामसाधुरहारषीद् योगतपोबलेन।' (भागवत ७।८।४५)

'अहारषीत्' अशुद्ध है।

(४१४) '... प्रणताः स्म भित्यम्।' (भागवत ७।८।४६)

'स्म' अशुद्ध है। 'स्मः' शुद्ध है।

(४१५) 'नाराधितुं पुरुगुणैरघुनापि पिप्रुः।' (भागवत ७।९।८)

(क) 'आराधितुम्' अशुद्ध है। 'आराधयितुम् शुद्ध है। राध चुरादि है।

(ख) 'पिप्रुः' अशुद्ध है।

---

२२ मथुरा संस्करण, बालबोधिनी भा. टी., पृष्ठ ५३४ में श्लोक संख्या ४१ है जो अशुद्ध है। श्लो. ३९ सायथिकी भा. टी., पण्डित पुस्तकालय, काशी तथा अन्य संस्करणोंमें है। —(लेखक)

'भुवप्रांह्वयोवा' (अष्टा० ७।४।१२) के अनुसार 'प्रभुः' शुद्ध प्रयोग होगा।

(४१६) 'यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्म-
शोकाग्निना ... ।' (भागवत ७।९।१७)

'सयोग' अशुद्ध है। 'संयोग' होना चाहिए।

(४१७) 'कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः ।'
(भागवत ७।९।२५)

'मृगतृष्णि' अशुद्ध है। 'मृगतृष्णा' अथवा 'मृगतृष्णिका' शुद्ध है।

(४१८) '...कथंनुविसृजेतव भृत्यसेवाम्।'
(भागवत ७।९।२८)

'विसृजे' अशुद्ध है। 'विसृजामि' शुद्ध है क्योंकि सृज (तुदादि) परस्मैपदी है।

(४१९) '...पारचर पीपृहि मूढमद्य।'
(भागवत ७।९।४१)

'पीपृहि' अशुद्ध है। 'पिपृहि' शुद्ध है।

(४२०) 'मूढेषुवै महदनुग्रह आर्तबन्धोर्किं-
तेनते प्रियजनानुसेवतांनः।'
(भागवत ७।९।४२)

(क) 'महदनुग्रह' कर्मधारय समास अशुद्ध है।
'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' (अष्टाध्यायी ६।३।४६) के अनुसार 'महानुग्रहः' शुद्ध है।

(ख) 'अनुसेवताम्' अशुद्ध है। 'अनुसेवमानानाम्' शुद्ध है।

(४२१) '...शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये।'
(भागवत ७।९।४४)

'अनुपश्ये' अशुद्ध है। 'अनुपश्यामि' शुद्ध है।

(४२२) 'कारणेषुन्यसेत् सम्यक् संघातं तु
यथार्हतः।' (भागवत ७।१२।२४)

'न्यसेत्' अपाणिनीय है। 'न्यस्येत्' पाणिनीय है।

(४२३) 'दिक्षु श्रोत्रं सनादेन ... ।'
(भागवत ७।१२।२७)

'सनादेन' अशुद्ध है। 'सनादम्' शुद्ध है।

(४२४) 'आश्वाघान्तेवसायिभ्यः कामात् ... ।'
(भागवत ७।१४।११)

'अन्तेवसायी'=चाण्डाल। यह अलुक समास है।
'अन्तावसायी' प्रयोग शुद्ध है।

×

(४२५) 'उपासत उपास्तापि नार्थदापुरुष-
द्विषाम्।' (भागवत ७।१४।४०)

'उपास्ता' अशुद्ध है। 'उपासिता' शुद्ध है क्योंकि धातु 'सेट्' है।

(४२६) 'यथा हि यूयं नृपदेव...उत्तरतात्मनः
प्रभोः।' (भागवत ७।१५।६८)

'उत्तरत' अशुद्ध है। 'उत्तरत' शुद्ध है।

स्कन्ध ८

(४२७) यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाशासत् त्रिविष्टपम्।'
(भागवत ८।१।१८)

'अशासत्' अशुद्ध है। 'अशात्' शुद्ध है।

(४२८) 'अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयः... ।'
(भागवत ८।१।२२)

यह अशुद्ध प्रयोग है।
'अष्टाशीति सहस्रं मुनयः' शुद्ध है।

(४२९) 'यत्र सङ्गी तसन्ना देर्नदद् गुहममर्षया।'
(भागवत ८।२।६)

'अमर्षया' स्त्रीलिङ्ग है। यहाँ 'पुल्लिङ्ग' में प्रयोग अशुद्ध है।

(४३०) '...यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे।'
(भागवत ८।२।२७)

'विचक्रमे' अशुद्ध है।
'विचक्राम' शुद्ध है।

(४३१) गजाः पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन।
(भागवत ८।२।२८)

'पार्ष्णिग्रहाः' अशुद्ध है। 'पार्ष्णिग्राहाः' शुद्ध है।

(४३२) '...प्रभवन्ति मोचितुम्।'
(भागवत ८।२।३२)

'मोचितुम्' अशुद्ध है। 'मोचयितुम्' शुद्ध है।

(४३३) 'यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो... ।'
(भागवत ८।३।६)

'विचेष्टतः' अशुद्ध है।
'विचेष्टमानस्य' शुद्ध है, क्योंकि चेष्ट् आत्मनेपदी है।

(४३४) 'जिजीविषे नाहमिहामुया... ।'
(भागवत ८।३।२५)

'जिजीविषे' अशुद्ध है। 'जिजीविषामि' शुद्ध है।

(४३५) ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं।'
(भागवत ८।३।३३)

टीकाकार पं. श्रीधर 'अरि' का अर्थ 'चक्र' करते हैं। भागवत ८।१०।५७ में भी 'ऽरिणाऽऽद्यः' आया है जिसका अर्थ 'चक्र' है। 'आदि' का 'चक्र' अर्थ अन्यत्र लौकिक साहित्यमें दुर्लभ है। यहाँ 'अप्रसिद्ध शब्द अप्रसिद्ध अर्थ' में प्रयुक्त है

(४३६) '...यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम्।'
(भागवत ८।४।४)

'कीर्तन्य' अपशब्द है। 'कीर्तनीय' शुद्ध है।

(४३७) 'भ्रममाणोऽम्भसि धृतःकूर्मरूपेण मन्दरः।'
(भागवत ८।५।१०)

'भ्रममाणः' अशुद्ध है। 'भ्रमन्' अथवा 'भ्राम्यन्' शुद्ध है। भ्रम् परस्मैपदी है।

(४३८) 'अभिनन्द्यहरेर्वीर्यमभ्याचष्टुंपचक्रमे।'
(भागवत ८।५।१४)

'अभ्याचष्टुम्' अशुद्ध है।

'चक्षिङःख्याञ्' (अष्टाध्यायी २।४।५४)के अनुसार 'अभ्याख्यातुम्' शुद्ध है।

(४३९) '...श्मशाने ते नूनमूतिमविदंस्त्वद्धातलज्जाः।'
(भागवत ८।७।३३)

'हात' अशुद्ध है।

'ओदितश्च' (अष्टाध्यायी ८।२।४५) के अनुसार 'हीन' शुद्ध है।

(४४०) 'विसर्पदुत्सर्पदसह्यमप्रति।'
(भागवत ८।७।१९)

(क) यहाँ 'अप्रति' शब्दका प्रयोग अशुद्ध है।

(ख) 'अप्रति' शब्द अप्रतीकार अर्थ है। अपूर्वः शब्दका अपूर्व अर्थ है।

(४४१) '...श्वेताद्रेर्हरन् भगवतोमहिम्।'
(भागवत ८।८।४)

'महिम्' वैदिक शब्द है। यह नपुंसकलिंग है, परन्तु यहाँ पुंलिंगमें प्रयोग अशुद्ध है।

(४४२) 'गन्धर्व यक्षासुरसिद्धचारण त्रै विष्टपेयादिषु ..।' (भागवत ८।८।१९)

'त्रैविष्टपेय' अपाणिनीय है। 'त्रिविष्टप' पाणिनीय है।

(४४३) 'आभिषेचनिका भूमिराहरत् सकलौषधीः।'
(भागवत ८।८।११)

'आभिषेचनिका' अपाणिनीय प्रयोग है।

(४४४) '...आयुर्वेदद्दगिज्यभाक्।'
(भागवत ८।८।३५)

'इज्यभाक्' अशुद्ध है 'इज्याभाक्' शुद्ध है।

(४४५) 'लिप्सन्तः सर्ववस्तूनि कलशंतरसाहरन्'
(भागवत ८।८।३६)

'लिप्सन्तः' अशुद्ध है।

'पूर्ववत् सनः' (अष्टाध्यायी १।३।६२)के अनुसार 'लिप्समानाः' शुद्ध है क्योंकि लभ, आत्मनेपद इसी सूत्रसे होगा।

(४४६) 'एवं सुरासुरगणाः समदेशकालहेत्वर्थकर्ममतयोऽपिफलेविकल्पाः।'
(भागवत ८।९।२८)

यहाँ 'फलेविकल्पाः' प्रयोगसे परोक्षप्रियता, अलौकिक समासकारिता, और कल्पितार्थ प्रयोजकता तीन दोष हैं।

(४४७) 'आह्वयन्तो विशन्तोऽग्रे युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः।'
(भागवत ८।१०।२७)

'आह्वयन्तो, युयुधुः' अशुद्ध है।

'स्पर्धायामाङः' (अष्टाध्यायी १।३।३१)के अनुसार 'आह्वयमानाः' व युयुधिरे' शुद्ध है।

(४४८) '...तारकेण गुहोऽस्यत।'
(भागवत ८।१०।२८)

'अस्यत' अशुद्ध है। 'आस्यत्' शुद्ध है।

(४४९) 'निशुम्भशुम्भयोर्देवी भद्रकाली तरस्विनी।'
(भागवत ८।१०।३१)

'निशुम्भशुम्भयोः' अशुद्ध है। 'निशुम्भशुम्भाभ्याम्' शुद्ध है।

(४५०) '...ततस्तोमरऋष्टयः।'
(भागवत ८।१०।४४)

'ऋष्टयः' अपाणिनीय प्रयोग है। 'ऋष्टीः' शुद्ध है।

(४५१) सांवर्तक इवात्युग्रो विबुधध्वजिनीमघाक्।' (भागवत ८।१०।५०)

'अधाक्' अशुद्ध है। दह् धातुसे 'अधाक्षीत्' शुद्ध होगा।

(४५२) 'तेनाहन्नृप...'

'तिग्मगदयाहनद्दण्डजेन्द्रं।' (भागवत ८।१०।५६,५७)

'अहनत्' अशुद्ध है। हन् धातुसे 'अहन्' शुद्ध है।

(४५३) '...वणिक्पथा भिन्ननवो यथार्णवे।' (भागवत ८।११।२५)

(क) 'भिन्ननवः' अशुद्ध है। 'भिन्ननावः' शुद्ध है।

(ख) यहाँ पुराणोक्त अर्थको स्वीकार करनेपर 'पथिन्' शब्द व्यर्थ हो जाता है। यहाँ अतिरिक्त दोष है।

(४५४) 'कृतो निविशतां भारैः पतत्त्रैः पततां भुवि।' (भागवत ८।११।३४)

'निविशताम्' अशुद्ध है।

'नेर्विशः' (अष्टाध्यायी १।३।१७) के अनुसार 'निविशमानानाम्' शुद्ध है।

(४५५) 'समाजितो भगवता सादरं सोमया भवः।' (भागवत ८।१२।३)

'सोमया'='उमासहित' एक अशुद्ध स्पष्टीकरण है। यह 'भव' का विशेषण है इसलिए कर्त्ताकारक है। अतः 'सोमः' शुद्ध है, बहुव्रीहि समास।

(४५६) 'मध्यतश्चलत्पद्मप्रवालं नयतीं ततस्ततः।' (भागवत ८।१२।१९)

'नयतीम्' अशुद्ध है।

'शप्श्यनोर्नित्यम्' (अष्टाध्यायी ७।१।८१) के अनुसार 'नयन्तीम्' पाठ होना चाहिए।

(४५७) 'विच्युतां संनह्यतीं वामकरेण वल्गुना।' (भागवत ८।१२।२१)

'संनह्यतीम्' अशुद्ध है। 'संनह्यन्तीम्' शुद्ध है।

(४५८) '...कटाक्षमुष्टः।' (भागवत ८।१२।२२)

'मुष्टः' अशुद्ध है। 'मुषित' प्रयोग शुद्ध है।

धातु मुष् स्तेये (क्रयादि सेट्) से यह शब्द बना है। अन्यग्रन्थोंमें भी 'मुषित' प्रयोग है। यथा– 'मुषिताः स्थ परिभूताः स्थ रामहतकेन' (उत्तररामचरितम्, अङ्क १)

यहाँ स्वयं 'भवभूति' जैसे महान् कवि 'मुषित' का प्रयोग कर रहे हैं। स्वयं भागवतकारने 'भगवान् भवः प्रमुषितेन्द्रियः।' (भागवत ८।१२।२७) में 'मुषितका' प्रयोग किया है। क्या भागवतकार भंगकी तरंगमें लिखता था कि उससे 'वदतो व्याघात' दोष होता है।

(४५९) 'त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽच्युतः।' (भागवत ८।१३।२०)

'भोक्ष्यते' अशुद्ध है। 'भोक्ष्यति' शुद्ध है क्योंकि पाणिनीके अनुसार परस्मैपद होना चाहिए।

(४६०) 'मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम् आत्मवान्।' (भागवत ८।१३।२४)

'एकादशम्' अशुद्ध है।

'नान्तादसंख्यादेर्मट्' (अष्टाध्यायी ५।२।४९) के अनुसार 'एकादशः' शुद्ध है।

इसीप्रकार भागवत ८।१३।२७ में 'द्वादशमः', श्लोक ३३ में 'चतुर्दशम' प्रयोगकी उपर्युक्त पाणिनी सूत्रके अनुसार अशुद्ध है। 'द्वादशः' और 'चतुर्दशः शुद्ध पाठ होना चाहिए।

(४६१) 'वदस्वमे।' (भागवत ८।१४।१)

'वदस्व' अशुद्ध है। 'वद' शुद्ध है। धातु वद् परस्मैपदी है।

(४६२) 'आकाशगङ्गाया देव्या वृनां परिखभूतया।' (भागवत ८।१५।१४)

'परिखभूतया' अपाणिनीय है।

'अस्यच्वौ' (अष्टाध्यायी ७।४।३२) के अनुसार 'परिखीभूतया' शुद्ध है।

(४६३) 'प्रयुञ्जन् भयमिन्द्रयोषिताम्।' (भागवत ८।१५।२३)

'प्रयुञ्जन्' अशुद्ध है।

'प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु' (अष्टाध्यायी १।३।६४) के अनुसार 'प्रयुञ्जानः' शुद्ध है।

(४६५) 'हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः।' (भागवत ८।१७।२४)

'समीडे' अपाणिनीय प्रयोग है।

'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः' (अष्टाध्यायी ३।१।३६) के अनुसार 'समीडाञ्चक्रे' शुद्ध है।

(४६५) इतोऽसो वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव। (भागवत ८।१८।३१)

'पुनीता' अशुद्ध है। हिन्दी भाषामें इसका प्रयोग होता है।

'पू' धातुसे 'पूता' होना चाहिए।

(४६६) ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पतिः।
(भागवत ८।१८।१५)

'इहैव वनस्पतिरिति विशेषणं प्रयुक्तं कविना नवमर्थं सुप जानता।'

वनोंके पति (स्वामी) सोमः है। यहाँ वनस्पतिको विशेषण प्रयोग करना 'रूढि प्रत्यनादर' है।

(४६७) शून्यमपश्यमानः।
(भागवत ८।१९।११)

'अपश्यमानः' अशुद्ध है। 'अपश्यन्' शुद्ध है।

(४६८) क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवंविभोः।
(भागवत ८।१९।३४)

'क्रमतः' अपाणिनीय है।

'क्रमः परस्मैपदेषु' (अष्टाध्यायी ७।३।७७) के अनुसार 'क्रामतः' पाठ शुद्ध है।

(४६९) निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात्।
(भागवत ८।२०।५)

'अधन्यात' अपाणिनीय है।

'धनगणं लब्धा' (अष्टाध्यायी ४।४।८४) के अनुसार अशुद्ध है।

(४७०) आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम्।
(भागवत ८।२०।१७)

'अवनेजन्यपां' समास अशुद्ध है।

'पुंवत्कर्म धारयजातीयदेशीयेषु' (अष्टाध्यायी ६।३।४२)के अनुसार 'अवनेजनानाम्' शुद्ध है।

(४७१) ऐक्षत् प्रजापतीञ्जघने आत्मसुख्यान्।
(भागवत ८।२०।२४)

'ऐक्षत् अशुद्ध है। 'ऐक्षत' (लङ्) शुद्ध है।

(४७२) 'प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलम्भते।' (भागवत ८।२१।३३)

'विप्रलम्भते' अपाणिनीय है।

'लभेश्च' (अष्टाध्यायी ७।१।६४) के अनुसार 'विप्रलभते' शुद्ध है।

(४७३) 'पाशैर्नातित्रीडे न च व्यथे।'
(भागवत ८।२२।७)

'व्रीडे' अशुद्ध है।

'व्रीड चोदने लज्जायां च, परस्मैपदी, दिवादि है। अतः 'व्रीड्यामि' शुद्ध है।

(४७४) 'तद्विशो विधुनोम्यहम्।'
(भागवत ८।२२।२४)

'विश्' का अर्थ यहाँ 'धन' है। किसी कोष व संस्कृतमें ऐसा अर्थ नहीं है। यहाँ 'अप्रसिद्ध शब्द अप्रसिद्ध अर्थमें प्रयुक्त है।

(४७५) 'किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः।'
(भागवत ८।२२।९)

'रिक्थहारैः' अपाणिनीय है।

'हरतेरनुद्यमनेऽच्' (अष्टाध्यायी ३।२।९)के अनुसार 'रिक्थहरै' शुद्ध है।

(४७६) 'पूरयित्वादितेः काममशासत् सकलं जगत्। (भागवत ८।२३।४)

'अशासत्' अपाणिनीय है।

'तिप्यनस्ते (अष्टाध्यायी ८।२।७३) के अनुसार 'अशात्' पाठ होना चाहिए।

(४७७) 'चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमायालीलाविसृष्टभुवनस्यविशारदस्य।'
(भागवत ८।२३।८)

'महोऽमित' में सन्धि अशुद्ध है।

'ओत्' (अष्टाध्यायी १।१।१५)के अनुसार सन्धिका निषेध है।

(४७८) 'जग्मुरदितिं च शशंसिरे।'
(भागवत ८।२३।२७)

'शशंसिरे' अशुद्ध है। 'शशंसुः' शुद्ध है।

शंसु स्तुतौ परस्मैपदी है।

(४७९) '...त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम्।'
(भागवत ८।२४।३२)

'भूर्भुवादिकम्' अशुद्ध है। 'भूर्भुव आदिकम्' शुद्ध है।

(४८०) 'उपस्थितस्य मे श्रृङ्गे निबध्नीहि महाहिना।' (भागवत ८।२४।३६)

'निबध्नीहि' अपाणिनीय है।

'हलः श्नः शानज्झौ' (अष्टाध्यायी ३।१।८३)के अनुसार 'निबधान' शुद्ध है।

(४८१) '...साकं सहनावमुदन्वति।'
(भागवत ८।२४।३७)

'सहनावम्' अपाणिनीय प्रयोग है।

'उरः प्रभृतिभ्यः कप्' (अष्टाध्यायी ५।४।१५१)के अनुसार 'सहनौकम्' शुद्ध है।

स्कन्ध ९

(४८२) '—कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हितः ।' (भागवत ९।१।४)

'शुश्रूषतां' अपाणिनीय प्रयोग है।

'ज्ञाश्रुस्मृदृशांसनः' (अष्टाध्यायी १।३।५७) के अनुसार 'शुश्रूषमाणानाम्' शुद्ध है।

(४८३) 'अप्रजस्य मनोः ।' (भागवत ९।१।१३)

'अप्रजस्य' अपाणिनीय है।

'नित्यमसिच् प्रजामेधयोः' (अष्टाध्यायी ५।४।१२२) के अनुसार 'अप्रजसः' शुद्ध है।

(४८४) 'अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ।' (भागवत ९।१।२१)

'अस्तौषीदित्यपशब्दः'

'स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु' (अष्टाध्यायी ७।२।७२) के अनुसार 'अस्तावीदित्येव रूपमिति पाणिनीयाः'

(४८५) 'सुद्युम्नस्याशयन् पुंस्त्वमुपाधावत ।' (भागवत ९।१।३७)

'आशयन्' अपाणिनीय प्रयोग है।

'आशयानः' पाणिनीय है। क्योंकि शी आत्मनेपद (धातुपाठ १०३२) है

(४८६) 'अजानन्नहनद् बभ्रोः शिरः शार्दूलशङ्कया ।' (भागवत ९।२।६ और ९।६।२२)

'अहनत्' अपाणिनीय प्रयोग है। 'अहन्' पाणिनीय है।

(४८७) 'न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भविताऽमुना । (भागवत ९।२।९)

'भविता' अशुद्ध है। 'भवितासि' शुद्ध है।

(४८८) 'भिषक्तमौ'। (भागवत ९।३।१३)

'भिषक्तमौ' अपाणिनीय है।

(४८९) '...पतिस्त्वया प्रलिम्भतो लोकनमस्कृतो मुनिः ।' (भागवत ९।३।२०)

'प्रलम्भितः' अशुद्ध है। 'प्रलब्धः' पाणिनीके 'उपसर्गात् खल्घञोः' (अष्टा० ७।१।६७) के अनुसार शुद्ध है।

(४९०) 'भ्रातरोऽभाङ्क्त ।' (भागवत ९।४।२)

'अभाङ्क्त' अशुद्ध है। 'अभाक्षुः भज (भ्वादि.) से शुद्ध है।

(४९१) '...अभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ।' (भागवत ९।४।२२)

'अभिस्रोतम्' समास अशुद्ध है।

'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' (अष्टा० २।१।१४) के अनुसार यहाँ अव्ययीभाव समास लिया जा सकता है।

'अभिस्रोतः' शुद्ध है।

(४९२) 'मधुवनेऽर्चयत् ।' (भागवत ९।४।२०)

'अर्चयत्' अशुद्ध है। 'आर्चयत्' शुद्ध है।

(४९३) 'गवां रुक्मविषाणीनां रूप्याङ्घ्रीणां सुवाससाम् ।' (भागवत ९।४।३३)

'रुक्मविषाणीनाम्' अपाणिनीय प्रयोग है।

'अजाद्यतष्टाप्' (अष्टा० ४।१।४) के अनुसार 'रुक्मविषाणानाम्' पाणिनीय है।

(४९४) 'तिरोभविष्यति'। (भागवत ९।४।५३)

'तिरोभविष्यति' नियमबद्ध भविष्यत् (लृङ्) है, परन्तु यहाँ भविष्यत् (लृट्) में प्रयोग अशुद्ध है।

(४९५) 'तस्य सोद्यमनंवीक्ष्य ।' (भागवत ९।५।२)

सोद्यमनम् = (सः + उद्यमनम्) सन्धि अशुद्ध है।

(४९६) 'बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि वृक्णन्नजस्रं प्रधने विराजसे ।' (भागवत ९।५।८)

(क) 'शिरोधराणि' अपाणिनीय प्रयोग है।

'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्', अष्टा० २।४।२) के अनुसार 'शिरोधरम्' शुद्ध है।

(ख) 'वृक्णन्' अशुद्ध है। यह पाठ गीताप्रेस गोरखपुर अष्टमसंस्करण. गुटका मुलमात्र, पृष्ठ ४४३, पंडित पुस्तकालय, वाराणसी, सामयिकी भा. टी. पृष्ठ ७५०, मथुरा संस्करण, बालबोधिनी भा. टी. द्वितीयखण्ड, पृष्ठ ९४ में है।

'वृश्चन्' शुद्ध है।

(४९७) मृगान् हत्वा क्रियार्हणान् । (भागवत ९।६।७)

'क्रियार्हणान् अशुद्ध है।

'क्रियार्हान्' शुद्ध होना चाहिए।

(४९८) ताः स्वपत्युर्महाराज... । (भागवत ९।६।५५)

'स्वपत्युः' अपाणिनीय प्रयोग है।

'पतिः समास एव' (अष्टा० १।४।८) के अनुसार 'स्वपतेः' शुद्ध है।

(४९९) यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौर्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम्।
(भागवत ९।८।१४)

'तरते' अपाणिनीय है, क्योंकि तॄ परस्मैपदी है।

(५००) दृष्ट्वा विसिस्मिरे राजन्।
(भागवत ९।८।१९)

'विसिस्मिरे' अपाणिनीय प्रयोग है।

'आदेशप्रत्ययोः' (अष्टा० ८।३।५९) के अनुसार 'विसिस्मियिरे' शुद्ध है।

(५०१) ...अटमान उवास कृच्छ्रम्।
(भागवत ९।१०।९)

'अटमानः' अशुद्ध है। 'अटन्' शुद्ध है अट (धातुपाठ २९५) परस्मैपदी हैं।

(५०२) निमज्ज्यमानधिषणध्वजहेम कुम्भशृङ्गाटका।
(भागवत ९।१०।१७)

'धिषण' अशुद्ध है। 'धिष्ण्य' शुद्ध है।

(५०३) यत्तोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा।
(भागवत ९।११।६)

'विश्य' अशुद्ध है। 'विष्ट्वा' शुद्ध है।

(५०४) स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक् सर्वत्र त्रासमावहः।
(भागवत ९।११।१७)

'त्रासमावहः' अशुद्ध है। षष्ठीतत्पुरुष होना चाहिए और 'त्रासावहः' शुद्ध है।

(५०५) स्त्रीपुम्भिः।
(भागवत ९।११।३४)

'स्त्रीपुम्भिः' अपाणिनीय प्रयोग है।

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौभवनात्' (अष्टा० ४।१।८७) के अनुसार 'स्त्रीपुंसैः' शुद्ध है।

(५०६) सासुरोडुपम्।
(भागवत ९।१४।६)

'सासुरः + उडुपम्' सन्धि अशुद्ध है।

(५०७) 'मातुरदत् स्वयम्।
(भागवत ९।१५।९)

'अदत् लङ्में अशुद्ध है। 'आदत्' शुद्ध है।

(५०८) 'तद्विज्ञाय मुनिः प्राहपत्नीं कष्टमकार्षीः।'
(भागवत ९।१५।१०)

'अकारषीः' अशुद्ध है। 'अकार्षीः' शुद्ध है।

(५०९) 'समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत्।'
(भागवत ९।१५।३६)

'समर्पयत्' अशुद्ध है। 'समार्पयत् (लङ्)' शुद्ध है।

(५१०) 'भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः।'
(भागवत ९।१५।४०)

'तुष्यते' अशुद्ध है। 'तुष्यति' शुद्ध है क्योंकि धातु तुष् परस्मैपदी है।

(५११) 'गन्धर्वराजंक्रीडन्तमप्सरोभिरपश्यत।
(भागवत ९।१६।२)

'अपश्यत' अशुद्ध है। 'अपश्यत्' शुद्ध है

(५१२) '...घ्नतैनां पुत्रका...।'
(भागवत ९।१६।५)

'घ्नत' अपाणिनीय प्रयोग है।

(५१३) 'ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त माम्।'
(भागवत ९।१६।३५)

'अकर्त' अशुद्ध है। 'अकुरुत' शुद्ध है।

(५१४) 'विजहुः सिञ्चतीर्मिथः।'
(भागवत ९।१८।८)

'सिञ्चतीः' अशुद्ध है।

'सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः' (अष्टा० ७।१।३९) के अनुसार 'सिञ्चन्त्य,' शुद्ध है।

(५१५) त्वांजरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम्।'
(भागवत ९।१८।३६)

'विशताम्' अशुद्ध है, क्योंकि विश् सदा परस्मैपदी है अतः 'विशतु' शुद्ध है।

(५१६) 'वह्व्योऽजाः कान्तकामिनीः।'
(भागवत ९।१९।५)

'कान्तकामिनीः' अपाणिनीय प्रयोग है।

'सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः' (अष्टा. ७।१।३९) के अनुसार 'कान्तकामिन्य' शुद्ध है।

(५१७) 'कृपणस्तांप्रसादितुम्।'
(भागवत ९।१९।९)

'प्रसादितुम्' अशुद्ध है। 'प्रसादयितुम्' शुद्ध है।

(५१८) ‘लम्बन्तं वृषणं भूयः।’
(भागवत ९।१९।१०)

‘लम्बन्तं’ अशुद्ध है, क्योंकि ‘लबि’ धातु आत्मनेपदी है। अतः ‘लम्बमानम्’ शुद्ध है।

(५१९) तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः प्रेमयन्त्रितः।
(भागवत ९।१९।१२)

‘सुभ्रु’ अपाणिनीय प्रयोग है।

(५२०) ‘न दुह्यन्ति मनः प्रीतिं...।’
(भागवत ९।१९।१३)[२३]

‘दुह्यन्ति’ दुह प्रपूरणेसे अपाणिनीय है। ‘दुहन्ति’ शुद्ध है।

दिवादि और अदादि गणोंका क्रम भंग है।

(५२१) ‘समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः।’ (भागवत ९।१९।१५)

‘सुखमय’ अपाणिनीय प्रयोग है।

‘सुखमय्य’ पाणिनीय है।

(५२२) ‘सेवतोऽसकृत्।’
(भागवत ९।१९।१८)

‘सेवतः’ अशुद्ध है। ‘सेवमानस्य’ शुद्ध है।

(५२३) ‘वशे स्थाप्यवनं ययौ।’
(भागवत ९।१९।२३)

‘स्थाप्य’ अशुद्ध है। ‘स्थापयित्वा’ शुद्ध है।

(५२४) ‘मरुतोऽबिभ्रन्।’
(भागवत ९।२०।३९।१०।२९।४०)

‘अबिभ्रन्’ अपाणिनीय प्रयोग है।

(५२५) विचित्र वीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्राङ्गदो हतः। (भागवत ९।२२।२१)

इस श्लोकमें ‘नाम्ना’ पदको ‘सनाम्ना’ अर्थमें प्रयुक्त है। ये दोनों पद समानार्थक नहीं है। यहाँ ‘अप्रसिद्ध शब्द अप्रसिद्ध अर्थ’ में प्रयोग दोष है।

(५२६) ‘शिबिर्वनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः।’ (भागवत ९।२३।३)

‘चत्वारोशीनरात्मजाः’ अपाणिनीय प्रयोग है। यह सन्धि कैसे ?

(५२७) ‘कन्यामहारषीत्।’
(भागवत ९।२३।३६)

‘महारषीत्’ अशुद्ध है। ‘महार्षीत्’ शुद्ध है।

(५२८) ‘स्नुषा तवेत्यभिहिते स्मयन्ती पतिमब्रवीत्।’ (भागवत ९।२३।३७)

‘स्मयन्ती’ अशुद्ध है। ‘स्मयमाना’ शुद्ध है।

(५२९) ‘...युधि भूपचम्वः।’
(भागवत ९।२४।६७)

‘चम्वः’ अशुद्ध है। ‘चमूः’ शुद्ध है।

स्कन्ध १० (पूर्वार्धः)

(५३०) ‘कथितो वंश विस्तारो भवतासोमसूर्ययोः।’ (भागवत १०।१।१)

यहाँ ‘प्रथमेवावशब्दे’ अष्टाध्यायी ३।३।३३) इस पाणिनीय सूत्रसे शब्द अभिधेय होने पर ‘विस्तर’ और अन्यत्र ‘विस्तार’ [शब्दही साधु होता है]। यहाँ कौनसी शब्दोपाधि है ? कथन और श्रवण [यहाँ सोम और सूर्यवंशका कथन और श्रवण इष्ट है, अतः ‘विस्तार’ शब्दका प्रयोग अशुद्ध है]

‘विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं चजनार्दनः। भूयः कथय०’
(गीता १०।१८)

‘विभूतेर्विस्तरोमया’ (गीता १०.४०)।

‘प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्यमे’
(गीता १०।१९)।

‘देवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थमे शृणु’
(गीता १६।६)।

गीतामें वेदव्यासने ‘विस्तर’ शब्द ही प्रयुक्त किया है। गीता महाभारतका ही एक अंश है। भागवतसे पूर्व ‘महाभारत’ की रचना वेदव्यासने की थी (भागवत १।४।२६)। जब गीतामें उन्होंने ‘विस्तर’ शब्दका प्रयोग किया है तब भागवतमें उन्होंने ‘विस्तार’ का प्रयोग कैसे किया ?

(५३१) ‘पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो...।’
(भागवत १०।१।२२)

२३ पण्डित-पुस्तकालय, काशी संस्करण, सान्वयिकी भा. टी; पृष्ठ ८०२ में ‘दुह्यन्ति’ पाठ अशुद्ध है। गीता-प्रेस गोरखपुर (अष्टम संस्करण, मूल) पृष्ठ ४६६ और मथुरा संस्करण, बालबोधिनी भा. टी. द्वि. ख०, पृष्ठ १३३ में पाठ ‘दुह्यन्ति’ है जो शुद्ध है। — (लेखक)

'अवधूतः' अशुद्ध है। 'अवधारितः' शुद्ध है।

(५३२) 'देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणेरथमारुहत्
(भागवत १०।१।२९)

'आरुहत्' अशुद्ध है। 'आरोहत्' अथवा 'आरुक्षत्' शुद्ध है।

(५३३) 'ते पीडितानिविविशुः।'
(भागवत १०।२।३)

'निविविशुः' अपाणिनीय प्रयोग है।

'नेर्विशः' (अष्टा० १।३।१७) के अनुसार 'निविविशिरे' पाणिनीय है।

(५३४) 'आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म...।'
(भागवत १०।२।२३)

'प्रतीक्षन्' अशुद्ध है। 'प्रतीक्षमाणः' शुद्ध है।

(५३५) 'याताः सदनुग्रहोभवान्।'
(भागवत १०।२।३१)

'सदनुग्रहः एक विचित्र निर्माण है।

'सतो भक्ताननुगृह्णतीति अनु + ग्रह + अप् एक उपपद समास है। व्याकरणसे यह अशुद्ध है।

(५३६) 'न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये...।' (भागवत १०।२।३६)

'निरूपितव्ये' अशुद्ध है। 'निरूपयितव्ये' शुद्ध है क्योंकि 'निरूप' चुरादि है।

(५३७) 'सुखोभनै द्रक्ष्याम गां द्यांच।'
(भागवत १०।२।३८)

'द्रक्ष्याम' अशुद्ध है। 'द्रक्ष्यामः' शुद्ध है।

(५३८) 'अम्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समन्धित।' (भागवत १०।३।४)

(क) 'समन्धित' अशुद्ध है।

'समेन्धत' शुद्ध है।

(ख) यहाँ 'अडऽभाव' कैसे ?

(५३९) 'मर्त्यो मृत्युव्याल भीतः पलायन्।'
(भागवत १०।३।२७)

'पलायन्' अशुद्ध है।

'पलायमानः' साधु है, । क्योंकि धातु आत्मनेपदी है।

(५४०) 'यास्येथे मद्गतिं पराम्।'
(भागवत १०।३।४५)

'यास्येथे' अशुद्ध है। 'यास्यथः' शुद्ध है।

(५४१) 'ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमोरवेः।'
(भागवत १०।३।४९)

'व्यवर्यन्त' अशुद्ध है। 'व्यव्रियन्त' शुद्ध है।

(५४२) '...मन्नचापानयुध्यतः।'
(भागवत १०।४।३५)

'अयुध्यतः' अशुद्ध है। 'अयुध्यमानान्' शुद्ध है।

(५४३) 'नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः।'
(भागवत १०।५।११)

'व्रजतीः' अशुद्ध है।

'सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः' (अष्टा० ७।१।३९) के द्वारा 'पूर्वसवर्णदीर्घ;' है। 'व्रजन्त्यः' साधु शब्द है।

(५४४) अव्याद्जोऽङ्घ्रि मणिमांस्तवजानु।
(भागवत १०।६।२२)

(क) 'अङ्घ्रि' अशुद्ध है। 'अङ्घ्री' शुद्ध है।

(ख) 'जानु' अशुद्ध है। 'जानुनी' शुद्ध है।

(५४५) न्यदहन् काष्ठधिष्ठितम्।
(भागवत १०।६।३३)

'धिष्ठितम्' अशुद्ध है। 'अधिष्ठितम्' शुद्ध है।

(५४६) गावः सर्वगुणोपेता...।
(भागवत १०।७।१६)

श्लोक १६ गीताप्रेस और मथुरा संस्करणमें है, परन्तु पण्डित-पुस्तकालय, काशी संस्करण, सामयिकी भा. टी. (सजिल्द) पृष्ठ २७ में श्लोक १६ अमुद्रित है।

'गावः' अशुद्ध है। 'गाः' शुद्ध है।

(५४७) पथवः श्रेय आधास्यद् गोप गोकुलनन्दनः। (भागवत १०।८।१६)

'आधास्यत्' अशुद्ध है। 'आधास्यति' शुद्ध है।

(५४८) सरीसृपन्तौ। (भागवत १०।८।२२)

'सरीसृपन्तौ' अशुद्ध है। 'सरीसृप्यमाणौ' शुद्ध है।

(५४९) अधृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा।
(भागवत १०।८।२६)

'विचक्रमतुः' अशुद्ध है।

वेः पादविहरणे' (अष्टा० १।३।४१) के अनुसार 'विचक्रमते' शुद्ध है।

(५५०) यर्ह्येवैतर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान् हरिः। (भागवत १०।८।३६)

'व्यादेहि' अशुद्ध है।

'आङोदोऽनास्यविहरणे' (अष्टा० १।३।२०) के अनुसार 'व्याददस्व' शुद्ध है।

(५५१) ध्वान्तागारे धृतमणि गणं स्वाङ्गमर्थं
प्रदीपं काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु
सुव्यग्रचित्ताः। (भागवत १०।८।३०)

इस श्लोकमें 'छन्दोभङ्ग है।

(५५२) इत्थं स्त्रीभिः सभयनयन श्री मुखा
लोकिनी भिर्व्याख्यातार्था प्रहसित
मुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत्॥
(भागवत १०।८।३१)

इस श्लोकमें भी 'छन्दोभङ्ग' है।

(५५३) 'तं चापि न तत्र पश्यती।'
(भागवत १०।९।७)

'पश्यती' अशुद्ध है।

'शाप्श्यनोर्नित्यम्' (अष्टा० ७।१।८१) के अनुसार 'पश्यन्ती' शुद्ध है।

(५५४) जघास हैयङ्गवमन्तरं गतः।'
(भागवत १०।९।६)

'हैयङ्गवीनं संज्ञायाम्' (अष्टा० ५।२।२३) इति निपातनाद्, 'हैयङ्गवम' साधु।'

(५५५) 'गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत्।'
(भागवत १०।९।११)

'भिषयन्ती' अशुद्ध है। यहाँ 'ह्रस्व' कैसे ?

'भीषयन्ती' शुद्ध है। छन्दोभङ्गभयसे ह्रस्व किया गया प्रतीत होता है।

(५५६) नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपीयत्तत् प्राप विमुक्तिदात्।
(भागवत १०।९।२०)

इसमें एक 'नकार' सार्थक है और दो अनर्थक है।

(५५७) 'दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्।
(भागवत १०।१०।३८)[२४]

'दर्शने' से 'छन्दोभंग' होता है। अतः यहाँ 'छन्दोभंग' दोष है।

(५५८) कृष्णकृष्णारविन्दाक्ष तातएहि स्तनं पिब।'
(भागवत १०।११।१५)

'तातएहि' अशुद्ध है।

अनुष्टुप छन्दोभङ्गके भयके कारण यह अशुद्धि है।

(५५९) '...ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन।'
(भागवत १०।१२।७)

'ध्मान्तः' अशुद्ध है। 'धमन्तः' शुद्ध है।

(५६०) 'साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु।'
(भागवत १०।१२।९)

'प्लवन्तः' अशुद्ध है। 'प्लवमानाः' शुद्ध है।

'प्लु' आत्मनेपद है।

(५६१) 'स्वकृतोऽकृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्चनर्तनैः।' (भागवत १०।१२।३४)

'अकृत' अपाणिनीय प्रयोग है।

'ह्रस्वादङ्गात्' (अष्टा० ८।२।२७) के अनुसार 'अकृषत' शुद्ध है। 'कृ' धातु आत्मनेपद है।

(५६२) 'तत्कालीनं कथं भवेत्।'
(भागवत १०।१२।४१)

'तत्कालीनम्' अपाणिनीय प्रयोग है।

(५६३) अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः।'
(भागवत १०।१३।५)

'अहोऽतिरम्यम्' में सन्धिकार्य अशुद्ध है।

(५६४) 'भुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा।' (भागवत १०।१३।७)

'बुभुजुः' अपाणिनीय प्रयोग है।

'भुजोऽनवने' (अष्टा० १।३।६६) के अनुसार 'बुभुजिरे' शुद्ध है। भुज् धातु है।

(५६५) 'वत्सान् सवयसानपि।'
(भागवत १०।१३।३८)

'सवयसान्' अशुद्ध है। 'सवयसः' शुद्ध है।

(५६६) 'ततोऽतिकुतुकोद्वृत्तास्ति...।'
(भागवत १०।१३।५६)

---

२४ गीताप्रेस गोरखपुर (अष्टम संस्करण। पण्डित पुस्तकालय, काशी संस्करण, मथुरासंस्करणमें 'दर्शने' पाठ है। —(लेखक)

यहाँ 'तृतीया लुक्' कैसे ?

(५६७) 'दृष्ट्वा त्वरेण... ।'

(भागवत १०।१३।६२)

'त्वरेण' अशुद्ध है। लौकिक संस्कृतमें इसका प्रयोग नहीं पाया जाता है।

(५६८) 'यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः ।' (भागवत १०।१३।६०)

स्वार्थेणि नैसर्गः साधु है, परन्तु अन्यत्र व्यवहृत नहीं है। यहाँ 'अप्रसिद्ध शब्द अप्रसिद्ध अर्थ' में प्रयोग है।

(५६९) 'क्षितिराक्षसघुणाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते।' (भागवत १०।१४।४०)[२५]

'अर्हन्' के प्रयोगसे छन्दोभङ्ग होता है।

(५७०) 'यदपाङ्गमोक्षम्।'

(भागवत १०।१५।४३)

'मोक्षम्' में लिङ्ग अशुद्ध है।

'मोक्षः' पुल्लिङ्ग है।

(५७१) 'गताध्वानश्रमौ।'

(भागवत १०।१५।४५)

'गताध्वानश्रमौ' में समास अशुद्ध है।

'अध्वनो यत्खौ' (अष्टा० ५।२।१६)के अनुसार 'गताध्वन्यश्रमौ' शुद्ध है।

यद्यपि यहाँ दूसरे अर्थमें पाणिनीने लिखा है तथापि यह 'आश्रम' के विशेषणमें प्रयुक्त हो सकता है।

(५७२) 'तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्र... ।'

(भागवत १०।१६।२६)[२६]

'स्पर्श' प्रयोगसे छन्दोभङ्ग होता है।

(५७३) 'अनुगीयमानोन्यविशद् व्रजं गोकुलमण्डितम्।' (भागवत १०।१८।१)

'न्यविशत्' अपाणिनीय है।

'नेर्विशः (अष्टा० १।३।१७)के अनुसार 'न्यविशत' (आत्मनेपद) शुद्ध है।

(५७४) कदाचित् स्पन्दोलिकया... ।

(भागवत १०।१८।१५)[२७]

'स्पन्दोलिकया' पाठ अशुद्ध है।

'सन्दोलिका शुद्ध है।

(५७५) 'क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणी।

(भागवत १०।१९।१)

'दूरचारिणी:' अशुद्ध है।

'सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः' (अष्टा० ७।१।३९) के अनुसार 'दूरचारिण्यः' शुद्ध है।

(५७६) 'क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः ।'

(भागवत १०।२०।१०)

'अनुशुष्यतीः' अपाणिनीय प्रयोग है।

'अनुशुष्यन्त्यः' साधु शब्द है।

(५७७) 'यथाऽऽयुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः।' (भागवत १०।२०।३७)

'क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे' (अष्टा० ६।१।७८)[२८] के अनुसार 'अय्यम्' अपाणिनीय प्रयोग है।

(५७८) 'देहाभिमानजंबोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम्।' (भागवत १०।२०।४२)

'बोधः' अशुद्ध है। 'बोधम्' शुद्ध है जो 'देहाभिमानजम्' का गुण प्रकट करता है।

(५७९) 'अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः।'

(भागवत १०।२१।७)

'विदामः' अशुद्ध है। 'विद्मः' शुद्ध है। विद्ज्ञाने धातुसे बनता है।

(५८०) 'नटवल्लोक्य च गायमानौ।'

(भागवत १०।२१।८)

'गायमानौ' अशुद्ध है। 'गायन्तौ' शुद्ध है क्योंकि गै धातु परस्मैपदी है।

(५८१) देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद् राज्ञे ब्रुवामहे।' (भागवत १०।२२।१५)

'ब्रुवामहे' अशुद्ध है। 'ब्रूमहे' (आत्मनेपद) शुद्ध है।

(५८२) 'साक्षात्कृतं नेमुखद्यमृग् यतः।'

(भागवत १०।२२।२०)

---

२५ गीताप्रेस, गोरखपुर, पण्डितपुस्तकालय, काशी संस्करण, मथुरा संस्करणमें 'अर्हन्' पाठ है। —(लेखक)

२६ गीताप्रेस गोरखपुर, पण्डित पुस्तकालय, काशी व मथुरा संस्करणमें 'स्पर्श' ही पाठ है। —(लेखक)

२७ 'स्पन्दोलिका' गीताप्रेस, गोरखपुर, पण्डित–पुस्तकालय, काशी तथा मथुरा संस्करणमें यह पाठ है। —(लेखक)

२८ पं० ब्रह्मदत्तजिज्ञासु द्वारा संशोधित 'अष्टाध्यायी सूत्र पाठ' द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ५७ —(लेखक)

'अश्वमृक्' अपाणिनीय प्रयोग है। अन्यत्र इसका प्रयोग अप्राप्य है।

'अश्वमृद्' साधु शब्द है।

(५८३) 'चेरुरार्यार्चनं सती:।'

(भागवत १०।२२।२७)

'सती,' अशुद्ध है। 'सत्य:' शुद्ध है।

(५८४) 'सहन्तो वारयन्ति न:।'

(भागवत १०।२२।३२)

'सहन्त:' अशुद्ध है। 'सहमाना:' शुद्ध है।

(५८५) 'अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा।' (भागवत १०।२३।२६)

'अहेतुक्यव्यवहितां' में 'कर्मधारय समास' अपाणिनीय प्रयोग है।

'पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' (अष्टाध्यायी ६।३।४२) के अनुसार 'अहैतुकाव्यवहिताम्' शुद्ध है।

(५८६) 'अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशी: स्त्रियः।' (भागवत १०।२३।५०)[२९]

'तादृशी:' अशुद्ध है। 'तादृश्य:' शुद्ध है।

(५८७) 'अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्त-विद्विषाम्!' (भागवत १०।२४।५)

'उदास्त' अशुद्ध है। 'उदासित' शुद्ध है क्योंकि आस् सेट् है।

(५८८) 'सुराणामीशविस्मय:।'

(भागवत १०।२५।१७)

'विस्मय:' अशुद्ध है। 'स्मय:' शुद्ध है।

'विस्मय' का अर्थ 'विचित्र' है। इससे 'अभिमान' अर्थ प्रकट नहीं होता है जैसा टीकाकारोंने किया है।

लौकिक संस्कृतमें ऐसा अर्थ नहीं है जैसे 'स्मयो मद:' (अमरकोष ११६)से 'स्मय:' प्रयोग उचित है।

(५८९) 'क्वचिद् हैयङ्गवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले।' (भागवत १०।२६।७)

'हैयङ्गव' पाणिनीय सूत्र 'हैयंगवीनं संज्ञायाम्' (अष्टा० ५।२।२३) के अनुसार असाधु है। वेदोंमें भी अप्राप्य है।

(५९०) 'वज्राश्मपर्षानिलै:।'

(भागवत १०।२६।२५)[३०]

'पर्ष' अशुद्ध है। 'परुष' शुद्ध है। छन्दोभंगके कारण व्याकरणका गला घोंटा गया है।

(५९१) 'गिरयोऽविभ्रदुन्मणान्।'

(भागवत १०।२७।२६)

'अबिभ्रत्' अशुद्ध है। 'अबिभरु:' शुद्ध है। डुभृञ धारणपोषणयो: (जुहोत्यादि)।

(५९२) 'तान् पाययत दुह्यत।'

(भागवत १०।२९।२२)

'दुह्यत' अशुद्ध है। 'दुग्ध' शुद्ध है। दुह प्रपूरणे लोट् त। यह अदादिगण है। भागवतकारने दुहको दिवादिमें प्रयोग किया है जो अशुद्ध है।

(५९३) 'कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशला: स्व आत्मन्...।'

(भागवत १०।२९।३३ & १०।३८।११)

'आत्मन्' अशुद्ध है।

'सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्याजाल:' (अष्टा० ७।१।३९)के अनुसार 'आत्मनि' शुद्ध है।

(५९४) 'किं ते कृतं क्षिति तपोवत।'

(भागवत १०।३०।१०)

'क्षिति' अशुद्ध है। 'क्षिते' शुद्ध है।

(५९५) कस्याश्चित् पूतनायन्त्या: कृष्णायन्त्य-पिबत् स्तनम्।
लोकायित्वा रुदत्यन्या पदाहञ्छकटा-यतीम्।

(भागवत १०।३०।१५)

'पूतनायन्त्या:', कृष्णायन्ती, 'शकटायतीम्' अपाणिनीय प्रयोग हैं।

---

२९ मथुरा संस्करण, बालबोधिनी भा. टी., द्वि. खं., द्वि. सं. पृष्ठ २४७ में श्लोक सं. ५० है, परन्तु गीताप्रेस, गोरखपुर, अष्टम संस्करण, (गुटकामूल) पृष्ठ ५२७ और पण्डित पुस्तकालय, काशी संस्करण, सामयिकी भा: टी. पृष्ठ ९२ में श्लोक संख्या ४९ में है। —(लेखक)

३० उक्त पाठ 'गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करण, पृष्ठ ५३१ में है। पण्डित पुस्तकालय काशी तथा मथुरा संस्करणमें 'वज्राश्मवर्षानिलै:' पाठ है जो अशुद्ध है। —(लेखक)

'कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च' (अष्टाध्यायी ३।१।११) के अनुसार 'पूतनायमानायाः, कृष्णायमाना व शकटायमानाम्' शुद्ध है।

'क्यङ्' आत्मनेपद है।

(५९६) 'कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन।
वत्सायतीं हन्ति चान्या तत्रैका तु वकायतीम्॥'
(भागवत १०।३०।१७)

'कृष्णरामायिते, गोपायन्त्यः, वत्सायतीम्, वकायतीम्।' सब अशुद्ध हैं।

धातुपाठमें रिंगि भ्वादि है चुरादि नहीं है।

(५९७) 'आहूय दूरगा यद्वत् कृष्णस्तमनुवर्ततीम्।' (भागवत १०।३०।१८)[31]

'अनुवर्ततीम्' अशुद्ध है। 'अनुवर्तमानाम्' शुद्ध है।

(५९८) 'यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम्।'
(भागवत १०।३०।२०)

'यतन्ती' अशुद्ध है। 'यतमाना' शुद्ध है, क्योंकि यत् आत्मनेपद है।

(५९९) 'एवंकृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून्।' (भागवत १०।३०।२४)

'पृच्छमानाः' अशुद्ध है। 'पृच्छन्त्यः' शुद्ध है।

(६००) 'ततोन्निववृतुः स्त्रियः।'
(भागवत १०।३०।४२)[32]

'निववृतुः' अशुद्ध है। 'निववृतिरे' शुद्ध है, धातु वृत् आत्मनेपदी है।

(६०१) ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्।'
(भागवत १०।३१।१५)

'उदीक्षताम्' अशुद्ध है।

'उदीक्षमाणानाम्' शुद्ध है, क्योंकि धातु ईक्ष आत्मनेपदी है।

(६०२) 'प्रलपन्त्यश्च चित्रधा।'
(भागवत १०।३२।१)

'चित्रधा' अपाणिनीय प्रयोग है।

यह लौकिक संस्कृत व अन्यत्र कहीं भी नहीं पाया जाता है।

(६०३) 'प्रतीवैक्षत् कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा।'
(भागवत १०।३२।६)

'ऐक्षत्' अशुद्ध है। 'ऐक्षत' शुद्ध है। ईक्ष (आत्मनेपद) लङ्, एकवचन।

(६०४) 'तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च।' (भागवत १०।३२।८)

'हृदिकृत्य' अशुद्ध है।

'हृदिकृत्वा' शुद्ध है, क्योंकि यहाँ गति समास हृदिके साथ नहीं हो सकता है।

'साक्षात्प्रभृतीनि च' (अष्टा० १।४।७४)[33] के अनुसार हृदिकृत्वा' ही साधु है।

(६०५) 'मया परोक्षं भजता तिरोहितं।'
(भागवत १०।३२।२१)

'तिरोहितम्' अशुद्ध है।

धातु तिरोधा अकर्मक है।

'गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च।' (अष्टा० ३।४।७२)[34] के अनुसार 'अहं भजन् तिरोहितः' (कलंरिक्षतः) होना चाहिए।

(६०६) 'उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठयो रतिप्रियाः।' (भागवत १०।३३।९)

'नृत्यमानाः' अशुद्ध है।

'नृत्यन्त्यः' शुद्ध है, क्योंकि नृती गात्र विक्षेपे परस्मैपदी है।

---

३१ गीताप्रेस, गोरखपुर, अष्टमसंस्करण, पृष्ठ ५३७में उक्त पाठ सही है; परन्तु पण्डित पुस्तकालय, काशी, संस्करण, सामयिकी भा. टी. पृष्ठ ११० और मथुरा संस्करण, बालबोधिनी भा. टी; द्वि० खण्ड द्वि. सं., पृष्ठ २६५ में 'कृष्णस्तमनुकुर्वतीम्' पाठ अशुद्ध मुद्रित है। —(लेखक)

३२ मथुरा संस्करण, बालबोधिनी भा. टी., पृष्ठ २६७ में श्लोक संख्या ४२ है जब कि गीताप्रेस, गोरखपुर, व पण्डित पुस्तकालय, काशी संस्करणमें श्लोक संख्या ४३ है। —(लेखक)

३३ पं. ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु द्वारा संशोधित 'अष्टाध्यायी सूत्र पाठः' द्वितीयसंस्करण, पृष्ठ ८ में सूत्र सं. ७३ है। —(लेखक)

३४ वही, पृष्ठ २८

(६०७) 'उच्छिन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साधिंति।' (भागवत १०।३३।१०)

'प्रीयता' अशुद्ध है।

प्रीङ् दिवादिगण, आत्मनेपदसे 'प्रीयमाणेन' शुद्ध है।

(६०८) 'यावतीर्गोपयोषितः।'

(भागवत १०।३३।२०)

'यावती:' अपाणिनीय प्रयोग है।

'पूर्वसवर्णदीर्घः' पाणिनीयसूत्रसे 'यावत्यः' साधु है।

(६०९) '...मूर्छितानविदन् नृप।'

(भागवत १०।३४।२४)

'अविदन्' अपाणिनीय प्रयोग है।

(६१०) 'स्पृह्यतीर्वयमिवाबहुपुण्याः।'

(भागवत १०।३५।७)

'स्पृह्यती:' अशुद्ध है। 'स्पृह्यन्त्यः शुद्ध है।

(६११) 'अलिकुलैरलघुगीतमभीष्टमाद्रियन् यर्हि सन्धितवेणुः।'

(भागवत १०।३५।१०)

'आद्रियन्' अशुद्ध है।

'आद्रियमाणः शुद्ध है। धातु दृङ् आदरे (आत्मनेपदम्)।

(६१२) '...उपरम्भति विश्वम्।'

(भागवत १०।३५।१२)

'उपरम्भति' अपाणिनीय प्रयोग है।

(६१३) '...कश्मलेन कवरं वसनं वा।'

(भागवत १०।३५।१७)

'कवर:' अपाणिनीय प्रयोग है।

'कवरी' (स्त्रीलिङ्ग) शुद्ध है।

(६१४) 'कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः।'

(भागवत १०।३५।१९)

'अन्वसत' अशुद्ध है। 'अन्वासत' शुद्ध है।

(६१५) 'कृष्णलीला नुगायतीः।'

(भागवत १०।३५।२६)

'गायती:' अशुद्ध है। 'गायन्त्यः' शुद्ध है।

(६१६) 'निर्विशन्तिघना यस्य ककुद्य चल शङ्कया।' (भागवत १०।३६।४)

यहाँ 'निविशन्ति' पाठ है जो अपाणिनीय प्रयोग है। 'नेर्विशः' (अष्टा० १।३।१७) के अनुसार निविशन्ते साधु है।

गीताप्रेस, गोरखपुर, काशी व मथुरा संस्करणमें 'निर्विशन्ति' पाठ है।

व्याकरणसे यह शब्द शुद्ध है, परन्तु इसका अर्थ 'प्रवेश' नहीं होगा, वरन् 'आनन्द उठाना' होगा, इसलिए यहाँ 'निर्विशन्ति' असंगत है।

(६१७) 'वृषासुरमुपाह्वयत्।'

(भागवत १०।३६।७)

'उपाह्वयत्' अपाणिनीय है।

'निसमुपविभ्योह्वः' व 'स्पर्धायामाङः' (अष्टा० १।३।३०-३१)के अनुसार 'उपाह्वयत' होना चाहिए।

(६१८) 'प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञाऽऽदिष्टं विजज्ञतुः।' (भागवत १०।३९।१०)

'विजज्ञतुः' अशुद्ध है। 'विज्ञपयामसतुः' शुद्ध है।

(६१९) 'तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं...'

(भागवत १०।३९।१९)

'वियनङ्क्षि' अशुद्ध है। 'वियुङ्क्षे' शुद्ध है। परस्मैपदीमें प्रयोग उचित नहीं है।

(६२०) 'अद्य ध्रुवंतत्रदृशो भविष्यते... महोत्सवः।' (भागवत १०।३९।२५)

टीकाकार पं. श्रीधरजी 'भविष्यते' का स्पष्टीकरण करते हैं कि—

'प्राप्स्यति (दृश इति द्वितीया, तेषां दृशो नेत्राणि महोत्सवो भविष्यते प्राप्स्यति, प्राप्त्यर्थस्य भवतेरात्मनेपदित्वात्) जो अनुचित है।

धातु 'भू' आत्मनेपदमें कभी नहीं पाया जाता है और धातुपाठमें भू सत्तायाम्' है और अकर्मक है।

छन्दोभंगके भयसे 'भविष्यते' का प्रयोग भागवतकारने किया है।

(६२१) 'सान्त्वयामाससप्रेमैरायास्य।'

(भागवत १०।३९।३५)

'सप्रेमः' अशुद्ध है। 'सप्रेमभिः' शुद्ध है।

(६२२) 'ता निराशा निववृतुर्गोविन्दाविनिर्वर्तने।' (भागवत १०।३९।३७)

'निववृतुः' अशुद्ध है। 'निववृतिरे' शुद्ध है।

(६२३) 'नमो भृगूणां पतये...'

(भागवत १०।४०।२०)

'पतये,' चतुर्थीकारक अपाणिनीय है।

'पत्ये' शुद्ध है, क्योंकि कोई समास नहीं है

(६२४) 'वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाददुः।' (भागवत १०।४१।७)

'आददुः' अपाणिनीय प्रयोग है।

'आङो दोऽनास्यविहरणे' (अष्टा० १।३।२०) के अनुसार 'आददिरे' शुद्ध है।

(६२५) 'सहाग्रजः सगोपालैः।'
(भागवत १०।४१।१२)

'सगोपालैः' बहुव्रीहि समास है अतः 'सगोपालः' होना चाहिए।

(६२६) 'शुशुभातेऽनुरञ्जितौ।'
(भागवत १०।४२।५)

यहां सन्धिकार्य अशुद्ध है।

(६२७) 'हृदयेन विदूयता।'
(भागवत १०।४२।३५)

'विदूयता' अशुद्ध है। 'विदूयमानेन' शुद्ध है, क्योंकि दूङ्, परितापे (दिवादि) आत्मनेपदी है।

(६२८) 'दन्ताभ्यां सोऽहनत् क्षितिम्।'
(भागवत १०।४३।११)

'अहनत्' अशुद्ध है। 'अहन्' शुद्ध है।

(६२९) 'अन्योन्यं प्रत्यरुन्धताम्।'
(भागवत १०।४४।४)

'प्रत्यरुन्धताम्' अशुद्ध है। 'प्रत्यरुधताम्' अथवा 'प्रत्यरुन्धाम्' शुद्ध है।

छन्दोभंग भयके कारण है।

(६३०) 'शयानान् वीरशय्यायां पतीनालिङ्ग्य शोचतीः।' (भागवत १०।४४।४४)

'शोचतीः' अशुद्ध है। 'शोचत्यः' शुद्ध है।

(६३१) प्रश्रयावनतः प्रीणन्नम्ब तातेति सादरम्।
(भागवत १०।४५।२)

'प्रीणन्' अशुद्ध है। 'प्रीणयन्' शुद्ध है, क्योंकि प्रीञ् तर्पणे (चुरादि) है।

(६३२) यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत्।'
(भागवत १०।४५।२२)

'पुष्णीताम्' अशुद्ध है। 'पुष्णीयाताम्' विधिलिङ्) शुद्ध है।

(६३३) एवं सान्त्वय्य भगवान् नन्दं सव्रजमच्युतः।
(भागवत १०।४५।२४)

'सान्त्वय्य' अशुद्ध है। 'सान्त्वयित्वा' शुद्ध है सान्त्व सामप्रयोगे, (चुरादि) है।

(६३४) तेभ्योऽदाद् दक्षिणा गावो रुक्ममाला।
(भागवत १०।४५।२७ & १०।४६।१८)

'गावः' अशुद्ध है। 'गाः' शुद्ध है।

(६३५) मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा।
(भागवत १०।४७।१७)

'विव्यधे' अशुद्ध है। 'विव्याध' 'व्यध' धातुसे शुद्ध है

(६३६) भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु।
(भागवत १०।४७।२१)

'सुगन्धम्' अपाणिनीय प्रयोग है।

टीकाकार पं० श्रीधर कहते हैं:- 'अगरुवत् सुगन्धम्' जो अशुद्ध है।

'गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः' (अष्टा० ५।४।१३५) और वार्तिक 'गन्धस्येत्वे तदेकान्त ग्रहणम्' के अनुसार 'सुगन्धिम्' साधु है

(६३७) ह्रियाद्वृणीत यूयं यत्।
(भागवत १०।४७।२६)

'अवृणीत' अशुद्ध है। 'अवृणीध्वम्' शुद्ध है।

वृञ् वरणे क्र्यादि लङ् में।

(६३८) अनुभाजितः।
(भागवत १०।४७।४१)

धातु भज् उपसर्ग 'अनु' के साथ लौकिक साहित्यमें प्रचलित नहीं है। अतः अनु + भाज् अव्यवहारिक है।

(६३९) 'यास्यन्नारुरुहे रथम्।'
(भागवत १०।४७।६४)

'रुरुहे' को आत्मनेपदमें प्रयोग भूल है, क्योंकि रुह (भ्वादि) परस्मैपदी है।

(६४०) 'वाचोऽभिधायिनीर्नम्रां।'
(भागवत १०।४७।६६)

'अभिधायिनीः' अशुद्ध है। 'अभिधायिन्यः' शुद्ध है।

(६४१) 'सुरेतरांशराज्ञामसुष्य।'
(भागवत १०।४८।२४)

'राज्ञाम्' अपाणिनीय प्रयोग है।

'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' (अष्टा० ५।४।९१) के अनुसार 'राजानाम्' पाणिनीय है।

(६४२) 'आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम।' (भागवत १०।४८।३३)

'वसन्ते' अशुद्ध है। 'वसन्ति' (परस्मैपद) शुद्ध है।

(६४३) 'प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ।' (भागवत १०।४९।५)

'सहद्भिः' अशुद्ध है। 'सहमानैः' (आत्मनेपद) होना चाहिए।

(६४४) 'भ्रात्रेयो भगवान् कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः। पैतृष्वस्रेयान् स्मरति...।' (भागवत १०।४९।९ + १०।७१।३९)

(क) 'भ्रात्रेयः' अपाणिनीय प्रयोग है।

'भ्रात्रेय' का अर्थ = भ्राताका पुत्र, भतीजा है।

'भ्रातुर्व्यच्च' (अष्टा० ४।१।१४४) के अनुसार 'भ्रात्रीयः' साधु है।

(ख) पैतृष्वस्रेयान्' अपाणिनीय प्रयोग है।

'पितृष्वसुश्छण्' (अष्टा० ४।१।१३२) के अनुसार 'पैतृष्वस्रीयः साधु है।

(६४५) तथापि सूनृतासौम्य हृदि नस्थीयते चले। (भागवत १०।४९।२७)

'स्थीयते' अशुद्ध है। 'तिष्ठति' (कर्तृवाच्य) होनाचाहिए।

दशमस्कन्धः (उत्तरार्द्धः)

(६४६) 'हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः (भागवत १०।५०।२६)

'ग्रह' अशुद्ध है। 'ग्राह' शुद्ध है।

(६४७) मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम्। (भागवत १०।५०।२८)

'हर्षकरीः' अशुद्ध है। 'हर्षकर्यः शुद्ध है।

(६४८) एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः। (भागवत १०।५०।४२)

यहाँ 'तावती' स्त्रीलिङ्ग है जो पाणिनीय सूत्र 'पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' (अष्टा० ६ ३ ४२) के अनुसार पुल्लिंग' होना चाहिए और 'तावदक्षौहिणीबलः' शुद्ध है। 'तावत्' सप्तदशको निर्देश करता है और शब्द बहुव्रीहि समास है।

(६४९) अष्टादशमसंग्रामे। (भागवत १०।५०।४४)

'अष्टादशम' अशुद्ध है। 'अष्टादश' होना चाहिए।

(६५०) बन्धून् वधिष्यत्यथवा। (भागवत १०।५०।४८)

'वधिष्यति' अपाणिनीय प्रयोग है। 'हनिष्यति' होनाचाहिए। वध बन्धने आत्मनेपदी है। 'हनश्चवधः' (अष्टा० ३।३।७६) के अनुसार वध धातुका अस्तित्व स्वतन्त्र नहीं है।

(६५१) शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं। (भागवत १०।५१।३१)

'शुश्रूषताम् अशुद्ध है।'

'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः' (अष्टा० १।३।५७) के अनुसार 'शुश्रूषमाणानाम्' होना चाहिए।

(६५२) लब्ध्वाजनो दुर्लभमत्रमानुषम्।' (भागवत १०।५१।४७)

'मानुषम्' अशुद्ध है। यहाँ संज्ञामें प्रयुक्त है।

'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणिच' (अष्टा० ५।१।१२४) के अनुसार 'मानुष्यम्' शुद्ध है।

(६५३) पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति। (भागवत १०।५१।५३)

'भूयेयम् अशुद्ध है। 'भूयासम्' या 'भवेयम्' शुद्ध है।

(६५४) वृणीत आर्योवरमात्मबन्धनम्। (भागवत १०।५१।५६)

'अकः सवर्णे दीर्घः' (अष्टा० ६।१।९७) के अनुसार 'वृणीत' और 'आर्यो' अपाणिनीय प्रयोग हैं।

(६५५) तुङ्गमारुहतां गिरिम्। (भागवत १०।५२।१०)

'आरुहताम्' अशुद्ध है। 'आरोहताम्' शुद्ध है। यह वैदिक शब्द है। लौकिक संस्कृतमें 'आरुक्षताम' होगा।

(६५६) को नु तृप्येत शृण्वानः। (भागवत १०।५२।२०)

'शृण्वानः' अशुद्ध है, क्योंकि श्रु धातु परस्मैपदी है।

(६५७) तामानयिष्य उन्मथ्य। (भागवत १०।५३।३)

'आनयिष्य' अशुद्ध है। आनेष्ये' शुद्ध है।

(६५८) योत्स्यामः संहतास्तेन इति। (भागवत १०।५३।१९)

'योत्स्यामः' अशुद्ध है। धातु युध् (आत्मनेपदी) से 'योत्स्यामहे' शुद्ध है।

(६५९) नैवं शशैश्चलयती चलपद्मकोशौ प्राप्ति तदा भगवतः। (भागवत १०।५३।५४)

'चलयती' अशुद्ध है। 'चालयन्ती' शुद्ध है।

(६६०) मास्म भैर्वामलोचने।

(भागवत १०।५४।५)

'मा भैः' अशुद्ध है। 'मा भैषीः' शुद्ध है।

(६६१) कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत्।

(भागवत १०।५४।२१)

'संयुगम्' अशुद्ध है। 'संयुगः' (पुल्लिङ्ग) शुद्ध है।

(६६२) बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमङ्गलैरापूर्णकुम्भागुरुधूपदीपकैः। (भागवत १०।५४।५६)

'द्वारि द्वारि इति वीप्सार्थेऽव्ययीभावः' अतः 'तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्' (अष्टा० २।४।८४) के अनुसार 'प्रतिद्वारम् या प्रतिद्वारि' शुद्ध है।

(६६३) स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम्। (भागवत १०।५५।२१)

'दैतेयीम्' अपाणिनीय प्रयोग है।

अपत्यार्थमें केवल ढक् जोडा जाता है। तद्धित अनियमित है।

(६६४) प्रद्युम्नजन् रहरूभावाः।

(भागवत १०।५५।४०)

'रहरूभावः' अशुद्ध है। 'रहोरूढभावाः' होना चाहिए।

(६६५) इति विज्ञात विज्ञानमृक्षराजानमच्युतः।

(भागवत १०।५६।२९)

'ऋक्षराजानम्' अपाणिनीय प्रयोग है।

'राजाहः सखिभ्यष्टच्' (अष्टा० ५।४।९१) के अनुसार 'ऋक्षराजम्' शुद्ध है।

(६६६) आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः।

(भागवत १०।५६।२४)

यहां 'विंशति' शब्दसे 'ति' का लोप क्यों है ?

(६६७) चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताजया। (भागवत १०।५७।१५)

'मोहिताजया' अशुद्ध है। 'मोहित अजया' शुद्ध है। यहाँ सन्धि अपाणिनीय है।

(६६८) कस्मिंश्चित् पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज। (भागवत १०।५७।२३)

'अन्वेष' अशुद्ध है। इष क्याद्रिसे 'अन्विच्छ' पाठ होना चाहिए।

(६६९) पूजयन् प्रतिनन्दितः।

(भागवत १०।५८।३५)

'प्रतिनन्दितः' कर्मवाच्यमें अशुद्ध है। 'कर्तृवाच्य' होना चाहिए।

(६७०) पयोधिप्रख्यैर्निराक्रमत्।

(भागवत १०।५७।१५ & १०।७१।१४)

'निराक्रमत्' अपाणिनीय प्रयोग है।

'क्रमः परस्मैपदेषु' (अष्टा० ७।३।७६) के अनुसार 'निराक्रामत्' शुद्ध है।

(६७१) विश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः।

(भागवत १०।५९।४५)

'विश्रमणम्' का अर्थ टीकाकार पं० श्रीधर लिखते हैं 'पादसंवाहनम्' परन्तु यह शब्द अन्यत्र इस अर्थ (चरणदबाने) में नहीं पाया जाता है। अतः यहाँ व्यवहारदूषण है।

(६७२) केशान् समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत् पद्मपाणिना। (भागवत १०।६०।२६)

'प्रामृजत्' अशुद्ध है।

मृजुष् शुद्धौ (धातुपाठ १०६६)से 'प्रामाट्' (लङ्) अथवा 'प्रामार्जीत्' (लुङ्) शुद्ध है।

(६७३) यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि।

(भागवत १०।६०।३१)

'नर्मैः' अशुद्ध है। 'नर्मभिः' शुद्ध है।

(६७४) कल्याणि नित्यदा।

(भागवत १०।६०।५०)

'नित्यदा' अपाणिनीय प्रयोग है।

'सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा' (अष्टा० ५।३।१५)के अनुसार अशुद्ध है।

(६७५) दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या।

(भागवत १०।६०।५६)

षहमर्षणेसे लङ् में 'असहः' अशुद्ध है।

'असहथाः' शुद्ध है; क्योंकि धातु आत्मनेपदी है।

(६७६) तस्याग्र आसीनन्।

(भागवत १०।६२।३२)

यहाँ 'तस्याः' और 'अग्रे' के मध्य सन्धि अशुद्ध है।

यह पाणिनीके 'पूर्वत्रासिद्धम्' सूत्रकी अवज्ञा है।

(६७७) शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत्।

(भागवत १०।६२।३४)

'अहनत्' अशुद्ध है। 'अहन्' शुद्ध है।

(६७८) निशास्याश्रुफलाक्ष्यरौदिषीत्।

(भागवत १०।६२।३५)

'अरौदिषीत्' अशुद्ध है।

रुदिर् अश्रुविमोचने धातुसे 'अरुदत्' या 'अरोदीत्' शुद्ध है।

(६७९) शिखिनापाक्रमद्रणात्।

(भागवत १०।६३।१५)

'अपाक्रमत्' अपाणिनीय प्रयोग है।

'क्रमः परस्मैपदेषु' (अष्टा० ७।३।७६) के अनुसार 'अपाक्रामत्' साधु है।

(६८०) प्राद्युम्निं रथमारोप्य सवध्वा समुपानयत्।

(भागवत १०।६३।५०)

'सवध्वा' समास नियमविरुद्ध है।

'वोपसर्जनस्य' (अष्टा० ६।३।८२) के अनुसार 'सवधूम्' बहुव्रीहि समास होगा। यदि यह समास नहीं है तब अव्यय 'सह' किसी भी व्याकरणके नियमसे 'स' नहीं हो सकता है।

(६८१) 'स्वास्यपाक्रमत्'।

(भागवत १०।६४।२१)

'अपाक्रमत्' अपाणिनीय प्रयोग है।

'क्रम परस्मैपदेषु' (अष्टा० ७।३।७६) के अनुसार 'अपाक्रामत्' शुद्ध है।

(६८२) 'आरुहत् पश्यतां नृणाम्।'

(भागवत १०।६४।३०)

'आरुहत्' अशुद्ध है और वैदिक (लुङ्) है।

'कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि' (अष्टा० ३।१।५९) के अनुसार 'आरुक्षत्' होगा।

(६८३) 'यदर्थे जहिम दाशाह।'

(भागवत १०।६५।११)

'जहिम' अशुद्ध है। 'अजहिम' शुद्ध है।

(६८४) 'विजगाह जलं स्त्रीभिः।'

(भागवत १०।६५।२८)

'विजगाह' अशुद्ध है।

गाहू विलोडने (धातुपाठ ६४९) आत्मनेपदसे 'विजगाहे' शुद्ध है।

(६८५) यन्नायासि मयाऽऽहुता।'

(भागवत १०।६५।२४)

'मयाऽऽहुता' अशुद्ध है।

(६८६) 'किरीटमालिनं शय्यां भुञ्जन्त्यस्मदुपेक्षया।' (भागवत १०।६८।२६)

'भुञ्जन्ति' अपाणिनीय प्रयोग है।

'भुजोऽनवने' (अष्टा० १।३।६६) के अनुसार 'भुञ्जते' शुद्ध है।

(६८७) 'तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान् मानिनोऽब्रुवन्।' (भागवत १०।६८।३३) [३५]

'दुर्भाषान्' अशुद्ध है। 'दुर्भाषाः' शुद्ध है, क्योंकि 'भाषा' सदैव स्त्रीलिङ्ग है।

(६८८) 'प्रभाव विद्याम ते'

(भागवत १०।६८।४४; १०।६९।१७)

'विदाम' अशुद्ध है। 'विद्म' शुद्ध है।

(६८९) 'पुत्र मा खिदः।'

(भागवत १०।६९।४०)

धातु खिद् आत्मनेपदका 'खिदः' रूप है अपाणिनीय है।

(६९०) 'वयांस्यरूरुवन् कृष्णं बोधयन्तीव वन्दिनः।' (भागवत १०।७०।२)

'अरूरुवन्' अशुद्ध है।

'गुणो यङ्लुकोः' (अष्टा० ७।४।८२) के अनुसार 'अरोरुवन्' शुद्ध है।

(६९१) 'वाचः पेशैः स्मयन् भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः।' (भागवत १०।७०।४५)

'वाचपेशैः' = पेशलवाग्भिः।

लौकिक साहित्यमें 'वाचपेशैः' का प्रयोग नहीं होता है।

'वाचःपेशोभिः' शुद्ध है। अलुक समास है।

(६९२) 'स्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति।'

(भागवत १०।७२।४)

---

३५ पण्डित-पुस्तकालय, काशी संस्करण, सामयिकी भा. टी, पृष्ठ २५८ में मुहुर्दुर्मंषान्' पाठ है जो अशुद्ध है। 'दुर्भाषान्' पाठ गीताप्रेस, गोरखपुर व मथुरा संस्करणमें है जो उचित है— (लेखक)

×

उपसर्ग 'परि' और क्रिया 'चरन्ति' अन्य शब्द 'ये' द्वारा पृथक् होते हैं। ऐसा प्रयोग वेदोंमें होता है, लौकिक साहित्यमें नहीं होता है।

(६९३) 'दहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः।'
(भागवत १०।७२।२६)

(क) 'पतमानेन' अशुद्ध है। 'पतता' शुद्ध है।

(ख) ईह आत्मनेपद है अतः 'ईहता' अशुद्ध है।
'ईहमानेन' शुद्ध है।

(६९४) 'अनयोर्मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम्।' (भागवत १०।७२।२९)

'मातुलेयम्' अपाणिनीय प्रयोग है, क्योंकि 'मातुल' शुभ्रादिगणमें सम्मिलित नहीं है।

(६९५) क्रुद्धो स्वमुष्टिभिरयः स्पर्शैरविह्वाम्।
(भागवत १०।७२।३८)

यहाँ 'स्पर्श' प्रयोगसे छन्दोभंग होता है।

(६९६) दिनादि निरगंस्तत्र।
(भागवत १०।७२।४०)

'निरगन्' अशुद्ध है। 'निरगमन्' शुद्ध है।

(६९७) इरुभन्त इव बाहुभिः।
(भागवत १०।७३।६)

रभि धातु यहाँ प्रयोग परिरम्भमाना आलिङ्गन) के अर्थमें प्रयोग किया गया है। यह अपाणिनीय है।

(६९८) नेनं नाथान्वसूयामो मागधं मधुसूदन।
(भागवत १०।७३।९)

'अन्वसूयामः' अशुद्ध है।

पाणिनीय सूत्र 'कण्ड्वादिभ्यो यक्' (अष्टा० ३।१।२७) के अनुसार असूज उपतापे 'कण्ड्वादिधातु' है। अतः 'असूयामः' होना चाहिए परन्तु यह क्रिया 'अनु' उपसर्गके साथ प्रयोग नहीं होती है।

(६९९) अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं।
(भागवत १०।७३।१४)

'मृगतृष्णा' शब्दका प्रयोग होता है। 'मृगतृष्णि' का प्रयोग नहीं होता है। 'तृष्णि' शब्द 'संस्कृत शब्दकोष' में नहीं है। अतः 'मृगतृष्णि' अशुद्ध है।

(७००) प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः।
(भागवत १०।७३।२८)

'प्रीणय्य' अपाणिनीय प्रयोग है।

'प्रीणयित्वा' होना चाहिए।

(७०१) यथान्वशासद् भगवांस्तथा।
(भागवत १०।७३।३०)

'अन्वशासत्' अशुद्ध है।

शासु अनुशिष्टौ (धातुपाठ १०७५) से 'अन्वशात्' होगा।

(७०२) तमेयुः सर्वराजानो राज्ञः प्रकृतयो नृप।
(भागवत १०।७४।११)

'सर्वराजानः' अशुद्ध है। 'सर्वराजाः' होना चाहिए।

(७०३) राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः।
(भागवत १०।७४।५१)

'आवभृथ्य' प्रयोग अशुद्ध है। छन्दोभंगभयसे ऐसा किया प्रतीत होता है।

(७०४) अवान् मयापोवाहितो रणात्।
(भागवत १०।७६।३३)

'अपोवाहितः' अशुद्ध है। 'अपवाहितः' शुद्ध है।

(७०५) वधिष्ये वीक्षतस्तेऽसुर्माराक्षेत्।
(भागवत १०।७७।२६)

'वीक्षतः' अशुद्ध है। 'वीक्षमाणस्य' (आत्मनेपद) होगा।

(७०६) किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः।
(भागवत १०।७७।३६)

'पुरुमायिनः' प्रयोग लौकिक साहित्यमें नहीं होता है। 'पुरुमायस्य' होगा। वेदोंमें ऐसा ही प्रयोग है। यथा 'नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति पुरुमायस्व'—
(ऋग्वेद मण्डल ६ सूक्त १८, मंत्र १२)

(७०७) सरस्वतीं प्रतिस्रोतं यया ब्राह्मणसंवृतः।
(भागवत १० ७८ १८)

'प्रतिस्रोतम्' अशुद्ध है। 'प्रतिस्रोतः' अव्ययीभाव समास शुद्ध है।

(७०८) करस्थेनाहनत् प्रभुः।
(भागवत १०।७८।२८ & १०।७९।५)

'अहनत्' अशुद्ध है।

हन् हिंसागत्योः (अदादि) से 'अहन्' होगा।

(७०९) अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागमुपगम्य सः।
(भागवत १०।७९।१०)

'अनुस्रोतेन' अशुद्ध है। 'अनस्रोतसा' होना चाहिए।

(७१०) विरमेतविरोपक्षो विषण्णः काममार्गणः।
(भागवत १०।८०।२)

'विरमेत' अपाणिनीय प्रयोग है।

'व्याङ्परिभ्योरमः' (अष्टा० १।३।८३) के अनुसार 'विरमेत्' होगा।

(७११) आत्मनो ललिता राजन् करौ गृह्य परस्परम्। (भागवत १०।८०।२७)

'गृह्य' अशुद्ध है। 'गृहीत्वा' शुद्ध है। पाणिनी मुनि 'ल्यप्' का आदेश वहीं करते हैं जहाँ 'गति समास' होता है। पाणिनीय सूत्र 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (अष्टा० ७।१।३७) के अनुसार ऐसा आदेश है।

(७१२) वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः। (भागवत १०।८०।३८)

'परिबभ्रिम' अशुद्ध है। 'परिबभ्रमिम' शुद्ध है। भ्रमु (भ्वादी) धातुसे ऐसा बनता है।

(७१३) स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः। (भागवत १०।८१।२३)

'हरिणाक्षिभिः' अपाणिनीय प्रयोग है।

'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' (अष्टा० ५।४।११३) के अनुसार 'हरिणाक्षीभिः' शुद्ध है।

(७१४) तत्रागन् भारतीः प्रजाः। (भागवत १०।८२।५)

(क) 'भारतीः' अशुद्ध है।

'सुपांसुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेया डाड्यायाजाल' (अष्टा० ७।१।३९) के अनुसार 'भारत्यः' होना चाहिए।

(ख) 'आगन' अशुद्ध है। 'आगमन्' शुद्ध है।

(७१५) व्यरोचन्त महातेजाः पथि। (भागवत १०।८२।८)

'महातेजाः' अशुद्ध है। 'महातेजसः' शुद्ध है।

(७१६) येषां गृहे निरयवर्त्मनिवर्तताम् वः ... स्वयमास विष्णुः। (भागवत १०।८२।३१)

(क) 'वर्तताम्' अशुद्ध है। 'वर्तमानानाम्' (आत्मनेपद) शुद्ध है।

(ख) 'आस' अशुद्ध है।

'अस्तेर्भूः' (अष्टा० २।४।५२) के अनुसार 'बभूव' होगा।

(७१७) ...अध्यगन्। (भागवत १०।८२।४८)

'अध्यगन्' अपाणिनीय प्रयोग है। 'अध्यगुः' होना चाहिए।

(७१८) सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाभ्ययुध्यत्। (भागवत १०।८३।१०)

'त्रिणवहानि' अशुद्ध है। 'त्रिणवाहानि' =(२७ दिवस) शुद्ध है।

(७१९) श्रियौकस्तस्या। (भागवत १०।८३।१२)

'पूर्वत्रासिद्धम्' के विरुद्ध यहाँ 'श्रियः + ओकः' सन्धिकार्य है। समास भी अशुद्ध है।

(७२०) आदधुः सशरं चापं। (भागवत १०।८३।२१)

'आदधुः' अपाणिनीय प्रयोग है।

'आङो दोऽनास्यविहरणे' (अष्टा० १।३।२०) के अनुसार 'आददिरे' होना चाहिए।

(७२१) गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः। (भागवत १०।८३।४३)

'गावः' अशुद्ध है। 'गाः' शुद्ध है।

(७२२) बलरामोऽच्युतोऽर्चयत्। (भागवत १०।८४।७)

'अर्चयत्' लङ्में अशुद्ध है। 'आर्चयत्' शुद्ध है।

(७२३) 'यदीशितव्यायति गूढ ईहया अहो।' (भागवत १०।८४।१६)

'ईशितव्यायति' अपाणिनीय प्रयोग है।

'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' (अष्टा० ३।१।११) के अनुसार 'ईशितव्यायते' होना चाहिए।

(७२४) 'प्रणम्य चोपसंगृह्य 'बभाषेदं सुयन्त्रितः।' (भागवत १०।८४।२८)

यहाँ सन्धिकार्य कैसे?

(७२५) 'मा राज्यश्रीरभूत् पुंसः।' (भागवत १०।८४।६४)

यहाँ 'माङ्' के योगमें 'अट्' कैसे?

(७२६) 'एतावतालमलमिन्द्रियलालसेन-मर्त्यात्मदृक्।' (भागवत १०।८५।१९)

'लालसेन' अशुद्ध है। 'लालसया' शुद्ध है।

(७२७) 'तेनासुरीमगन् योनिमधुना वधकर्मणा।' (भागवत १०।८५।४८)

'अगन्' अशुद्ध है। 'अगमन्' शुद्ध है।

(७२८) 'सभार्योऽवनिजे मुदा।' (भागवत १०।८६।३९)

'अवनिजे' अपाणिनीय प्रयोग है।

'निजां त्रयाणां गुणः श्लौ' (अष्टा० ७।४।७५) के अनुसार 'अवनेनिजे' होना चाहिए। णिजिर् शौचपोषणयोः (जुहोत्यादि) आत्मनेपदसे ऐसा रूप बनता है।

(७२९) 'ये च भिदां विपणमृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति त आरूपितैः ।'
(भागवत १०।८७।२५)[३६]

'आरुपितैः' अपाणिनीय प्रयोग है । ''आरोपितैः' शुद्ध है ।

(७३०) 'सोऽविभ्यत् स्वकृताच्छिवः ।'
(भागवत १०।८८।२३)

'अबिभ्यत्' अपाणिनीय प्रयोग है ।
'अबिभेत्' शुद्ध है ।

(७३१) 'मावज्ञात्मानमात्मना ।'
(भागवत १०।८९।४६)

'मा अवज्ञ' अशुद्ध है । 'मा अवजानीहि' अथवा 'अवज्ञासीः' शुद्ध है ।

'...उद्घृतबृहत्कवरप्रसूनाः।
(७३२) कान्तं स्म रचकाजिहीरषयोपगुह्य ।'
(भागवत १०।९०।१०)

(क) 'जिहीरषा' अशुद्ध है । 'जिहीर्षा:' शुद्ध है ।
(ख) 'कबर' अपाणिनीय प्रयोग है । 'कबरी' (स्त्री लिंग) शुद्ध है ।

(७३३) '...मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ।'
(भागवत १०।९०।२३)

'मुष्ट' अशुद्ध है । मुष स्तेये (धातुपाठ १५३०)से 'मुषित' शुद्ध है. क्योंकि धातु सेट है ।

(७३४) 'न ह्येतस्मिन् कुले जाता अधना अबहुप्रजाः । (भागवत १०।९०।३९)

'अबहुप्रजाः' बहुवचन और अपाणिनीय प्रयोग है ।
'अबहुप्रजसः' होना चाहिए ।

'...निजवर्त्मरिरक्षया...
(७३५) ...यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्य ।'
(भागवत १०।९०।४९)

(क) 'श्रूयात्' अशुद्ध है ।
धातु श्रु श्वादि है और 'श्रुवः शृ च' (अष्टा० ३।१।७४)के अनुसार श्रु शृ हो जाता है । अतः 'शृणुयात्' साधु है ।

(ख) 'रिरक्षा' अपाणिनीय है । 'रिरक्षिषा' होना चाहिए ।

स्कन्ध ११

(७३६) 'भुवोऽवतारयद् भारं ।'
(भागवत ११।१।१)

'अवतारयत्' अशुद्ध है । 'अवातारयत्' शुद्ध है । छन्दोभङ्ग भयसे ऐसा प्रयोग प्रतीत होता है ।

(७३७) 'मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य ।'
(भागवत ११।२।३३)

'अकुतश्चिद्भयम्' समास अशुद्ध है ।

(७३८) 'लोकांस्त्रीन् प्रतपिष्यति ।'
(भागवत ११।३।९)

'प्रतपिष्यति' अपाणिनीय प्रयोग है ।
'प्र + तप् लृट् अनिट् है । 'प्रतप्स्यति' शुद्ध है ।

(७३९) पश्येत पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् । (भागवत ११।३।१८)

'मिथुनीचारिणाम्' अपाणिनीय प्रयोग है ।
'मिथुनचारिणाम् शुद्ध है ।

(७४०) आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्णभूषणाम् । (भागवत ११।४।१४)

'वृङ्ध्वम्' अशुद्ध है । वृणीध्वम्' शुद्ध है

(७४१) संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताञ्छ्रमणानृषींश्च ।
(भागवत ११।४।१९)

'संस्तुन्वतः' अशुद्ध है । 'संस्तुवतः' शुद्ध है ।
भागवतकारने यहाँ ष्टुञ स्तुतौ (धातुपाठ १०४३) स्वादि धातुमें प्रयोग किया है जब कि यह अदादि लौकिक संस्कृतमें होता है ।

(७४२) शूद्रान् कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते।
(भागवत ११।४।२२)

'न्यहनिष्यत्' अशुद्ध है । 'निहनिष्यति' शुद्ध है।

(७४३) सतोऽवमन्यन्ति हरि प्रियान् खलाः ।
(भागवत ११।५।९)

'अवमन्यन्ति' अपाणिनीय प्रयोग है ।

(७४४) सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्। (भागवत ११।५।४१)[३७]

'कर्तम्' अशुद्ध है । 'कर्त्वम्' या कृत्यम्' शुद्ध है।
'कृत्यार्थे तवैकेन् केन्यत्वनः' (अष्टा० ३।४।१४) के अनुसार 'कर्त्वम्' वैदिक शब्द होता है ।

---

३६ पण्डित पुस्तकालय, काशी संस्करण, सामयिकी भा. टी. पृष्ठ ३३५ में 'आरुपितैः' पाठ अशुद्ध है । गीता प्रेस, गोरखपुर व मथुरा संस्करणमें 'आरुपितैः' होना चाहिए । — (लेखक)

३७ पण्डित-पुस्तकालय, वाराणसी संस्करण सामयिकी भा. टी. में 'कर्तुम्' अशुद्ध मुद्रित है । गीता प्रेस, गोरखपुर व मथुरा संस्करण, बाल बोधिनी भा. टी. में 'कर्तम् पाठ है— (लेखक)

टीकाकार पं० श्रीधर लिखते हैं— 'कृतीछेदने इत्यस्मात् भेदं परिहृत्य 'वासुदेवः सर्वमिति बुद्ध्या, जो काल्पनिक और तर्कहीन है।

(७४५) भूभारासुरराजन्यहन्तवे गुप्तये सताम्।
(भागवत ११।५।५०)

'हन्तवे' शब्द वैदिक है जो 'हन्' धातुसे बनता है तब 'भूभारराजन्य हन्तवे' रूपमें समास अशुद्ध है।

'तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्सेकसेनध्यै अध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैतवैतवेङ्तवेनः' (अष्टा० ३।४।९) के अनुसार 'भूभारराजन्यान् हन्तुम्' (लौकिक संस्कृतमें) होगा।

(७४६) पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः। यः सुप्रणीतममुयार्हणमाददन्नो ... (भागवत ११।६।१२)

(क) 'पर्युष्ट' अशुद्ध है। 'पर्युषित' होना चाहिए।

(ख) 'प्रतिपत्नि' अपाणिनीय प्रयोग है।

'पत्युर्नो यज्ञसंयोगे' (अष्टा० ४।१।३३) के अनुसार 'प्रतिपत्नी' शुद्ध है।

(ग) 'आददत्' अशुद्ध है।

'आङो दोऽनास्यविहरणे (अष्टा० १।३।२०) के अनुसार आ + दा आत्मनेपद है और 'आदत' होना चाहिए।

(७४७) आनुश्रवं श्रुतिभिरङ्घ्रिजमङ्गसङ्गैस्तीर्थद्वयं। (भागवत ११।६।१९)

'आनुश्रवम्' अशुद्ध है। 'आनुश्रविक' ठञ् से शुद्ध रूप होगा।

(७४८) ऊर्णनाभिः सुपेशकृत्।
(भागवत ११।७।३४)

'सुपेशकृत्' अशुद्ध है। 'सुपेशस्कृत' शुद्ध है।

(७४९) नीडेस्वपत्युः सन्निधौ सती।
(भागवत ११।७।५७)

'स्वपत्युः' अपाणिनीय प्रयोग है।

'पतिःसमास एव' (अष्टा० १।४।८) के अनुसार 'स्वपतेः' होगा।

(७५०) सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः। (भागवत ११।८।१६)

'आशासानाम्' अशुद्ध है। 'आशासमानानाम्' शुद्ध है।

(७५१) स्वनं महत्। (भागवत ११।९।६)

'स्वन् पुल्लिग है इसलिए 'महत्' के साथ एक रूप नहीं होसकता है। अतः यह प्रयोग अशुद्ध है।

(७५२) नाद्रियेत् कर्म चोदनाम्।
(भागवत ११।१०।४)

'नाद्रियेत्'। आ + दृङ् आत्मनेपद है। अतः यह अपाणिनीय प्रयोग है।

(७५३) सङ्गम्य निरसेदेत द्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम्।
(भागवत ११।१०।११)

'निरसेत्' अपाणिनीय प्रयोग है।

'निरस्येत्' होना चाहिए।

(७५४) मयो मय्यर्प्य सर्वंगे।
(भागवत ११।११।२१)

'अर्प्य' अपाणिनीय प्रयोग है।

'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (अष्टा० ७।१।३७) के अनुसार 'अर्पयित्वा' होना चाहिए। यहां गति समास नहीं है।

(७५५) आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभये हते।
(भागवत ११।१३।३)

'उभये' अपाणिनीय प्रयोग है।

'उभयस्मिन्' (सर्वनाम) शुद्ध है।

(७५६) विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया।
(भागवत ११।१३।३४)

'उरुधा' अपाणिनीय प्रयोग है।

(७५७) सुखमया दिशः।
(भागवत ११।१४।१३)

'सुखमया' अपाणिनीय प्रयोग है।

'टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः।' (अष्टा० ४।१।१५) के अनुसार 'सुखमय्यः' होना चाहिए।

(७५८) घण्टानादं विसोर्णवत्।
(भागवत ११।१४।३६)

'विसोर्णवत्' अशुद्ध है। 'विसोर्णावत्' शुद्ध है।

(७५९) जन्मौषधितपोमन्त्रैर्यावतीरिह सिद्धयः।
(भागवत ११।१५।३४)

'यावतीः' अपाणिनीय प्रयोग है।

सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः (अष्टा० ७।१।३९) के अनुसार 'यावत्यः' होना चाहिए।

(७६०) यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः। (भागवत ११।१६।१८)

'संयमताम्' अपाणिनीय प्रयोग है।

'इषुगमियमां छः' (अष्टा० ७।३।७७) के अनुसार 'संयच्छताम्' होगा।

(७६१) संवत्सरोऽस्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ। (भागवत ११।१६।२७)

'अनिमिषा ' अशुद्ध है। 'अनिमिषाणाम्' शुद्ध है।

(७६२) कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदिस्थिते। (भागवत ११।२०।२९)

'हृदय्या' पाणिनीय सूत्र 'भवे छन्दसि' (अष्टा० ४।४।११०) के अनुसार अशुद्ध है।

(७६३) य एतान् मत्पथो हित्वा। (भागवत ११।२१।१)

'मत्पथः' अपाणिनीय प्रयोग है। 'मत्पथान्' शुद्ध है।

(७६४) नित्यदा ह्यङ्ग भूतानि भवन्ति न भवन्ति च। (भागवत ११।२२।४२)

'नित्यदा' अशुद्ध है। लौकिक साहित्यमें इसका प्रयोग नहीं होता है।

(७६५) 'एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः।' (भागवत ११।२३।२०)

(क) 'एकास्निग्धाः' अशुद्ध है।

'अन्येषामपि दृश्यते' (अष्टा० ६।३।१३७) के अनुसार 'एकस्निग्धाः' शुद्ध है।

(ख) 'काकिणिना' अशुद्ध है। 'काकिण्या' (स्त्री लिङ्ग) शुद्ध है।

(७६६) 'कतमाय कुप्येत्।' (भागवत ११।२३।५१)

'कतमाय' अपाणिनीय प्रयोग है। 'कतमस्मै' शुद्ध है।

(७६७) 'म्वन्यो मोचितुं प्रभुः।' (भागवत ११।२६।१५)

'मोचितुम्' अशुद्ध है। 'मोचयितुम्' शुद्ध है।

(७६८) 'षाडशार्चात्रद्धानतः' (भागवत ११।२७।४१)

'षोडशार्चा' अपाणिनीय प्रयोग है। 'षोडशार्चेन' होना चाहिये।

(७६९) 'पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात्।' (भागवत ११।२७।५२)

'मत्साम्यताम्' अशुद्ध है।

'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' (अष्टा० ५।१।१२४) के अनुसार 'मत्साम्यम्' होगा।

(७७०) विज्ञानमेतत्त्रियवस्थमङ्ग। (भागवत ११।२८।२०)

'त्रियवस्थम्' वैदिक है और यहाँ प्रयोग अशुद्ध है। 'त्र्यवस्थम्' होना चाहिए।

द्वादश स्कन्ध

(७७१) 'विभोर्वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम्।' (भागवत १२।३।१४)

'वचोविभूतीः' अशुद्ध है। 'वचोविभूतयः' होना चाहिए।

(७७२) 'रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुञ्चति।' (भागवत १२।४।९)

'पिबते' अशुद्ध है।

पा धातु परस्मैपद है इसलिए 'पिबति' शुद्ध है।

(७७३) त्वं तु राजन् मरिष्येति पशु बुद्धिमिमां जहि। (भागवत १२।५।२)

'मरिष्येति' में सन्धिकार्य अशुद्ध है।

'मरिष्य इति' होना चाहिए।

यदि पाणिनीय सूत्र 'एचोऽयवायावः' (अष्टा० ६।१।७५) के अनुसार 'मरिष्ये + इति' सन्धि है तब 'ए' के स्थानमें 'अय्' और 'लोपः शाकल्यस्य' (अष्टा० ८।३।१९) के अनुसार 'यलोप' है तब 'पूर्वत्रासिद्धम्' (अष्टा० ८।२।१) के द्वारा 'मरिष्येति' में सन्धि नहीं हो सकती है 'लोपशास्त्र असिद्धमें होता है।

(७७४) 'मनः सृजति वै देहान् गुणान् कर्माणि चात्मनः। (भागवत १२।५।६)

'सृजति' परस्मैपदमें प्रयोग करनेसे छन्दोभंग होता है।

(७७५) 'ब्रह्मभूतो महायोगी निःसङ्गश्छिन्न संशयः। (भागवत १२।६।१०)

'ब्रह्मभूतः' अपाणिनीय प्रयोग है।

(७७६) 'जनमेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षक भक्षितम्। (भागवत १२।६।१६)

'जनमेजयः व्याकरणसे शुद्ध है, परन्तु यहाँ इसके प्रयोग से 'छन्दोभंग' होता है।

(७७७) 'पञ्चत्वमृच्छते जन्तुर्भुक्त आरब्ध कर्म तत्।' (भागवत १२।६।२६)

'ऋच्छते' अशुद्ध है।

''ऋगतिप्रापणयोः परस्मैपद धातु है अतः 'ऋच्छति' होना चाहिए।

(७७८) क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान् दुर्मेधान् वीक्ष्यकालतः। (भागवत १२।६।४७)

'दुर्मेधान्' अपाणिनीय प्रयोग है।

'नित्यमसिच् प्रजामेधयोः।' (अष्टा० ५।४।१२२) के अनुसार 'दुर्मेधसः' होना चाहिए।

(७७९) 'तल्लोलुपतयाऽऽददुः।' (भागवत १२।६।६५)

'आददुः' अशुद्ध है।

आ + दा से 'आददिरे' (आत्मनेपद) होगा।

(७८०) 'अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्या-स्तथापरे।' (भागवत १२।७।३)

'अधीयेताम्' लङ् में अशुद्ध है।

'अध्यैयाताम्' शुद्ध है, क्योंकि पं. भट्टोजीदीक्षित आलोचना करते हैं इङ् अध्ययनने (१०४६) नित्यमधि पूर्वः इससे परत्वादियङ् तत आट् वृद्धिः अध्यैयाताम्' (सिद्धान्तकौमुदी, तत्त्वबोधिनी टीकासहित, निर्णयसागर प्रेस, सूत्र सं. २४५९)

(७८१) 'अधीयन्त व्यासशिष्यात् संहितां-मत्पितुर्मुखात्। ...समध्यगाम्।' (भागवत १२।७।६)

(क) 'अधीयन्त' अशुद्ध है। 'अध्यैयत' होगा।

(ख) 'समध्यगाम्' अशुद्ध है। 'समध्यगीषि' या 'समध्यैषि' शुद्ध है।

(७८२) 'अधीमहि व्यासशिष्याच्चतस्रो मूल-संहिताः।' (भागवत १२।७।७)

'अधीमहि' अधि + इङ् (धातुपाठ १०४६) सर्वत्र आत्मनेपद है इसलिए लट् में 'अधीमहे' होगा। यदि यह लङ् है तो 'अध्यैमहि' होगा।

(७८३) 'शतह्रदाभीरूपतापितं जगत्।' (भागवत १२।९।१३)

'शतह्रदाभीः' अशुद्ध है। यहाँ दीर्घ क्यों है?

'शतह्रदाभिः होना चाहिए।

(७८४) 'मन्वन्तरावताराश्च विष्णोर्हयशिरादयः (भागवत १२।१२।१९)

'हयशिरादयः' में सन्धिकार्य अशुद्ध है।

'हयशिर आदयः' होगा।

(७८५) 'विप्रोऽधीत्याप्नुयात् प्रज्ञां राजन्यो-दधिमेखलाम्।' (भागवत १२।१२।६४)

'राजन्योदधिमेखलाम्' सन्धि अशुद्ध है।

'राजन्य उदधिमेखलाम्' होगा। एक सन्धिके होने पर पुनः सन्धि करना निषेध है।

'लोप शास्त्रस्य 'पूर्वत्रासिद्धम्' (अष्टाध्यायी ८।२।१) इत्यसिद्धत्वात् न पुनः स्वरसन्धिः।

(७८६) 'यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैःस्तवैर्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदै-र्गायन्ति' (भागवत १२।१३।१)

(क) 'स्तुन्वन्ति' अशुद्ध है।

ष्टुञ स्तुतौ अदादि है, स्वादि नहीं है। अतः 'स्तुवन्ति' होगा।

(ख) 'उपनिषदैः' अशुद्ध है। 'उपनिषद्भिः' शुद्ध है।

